



श्रीराम जय राम जय जय राम

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

श्रीसमर्थ बोधामृत

श्रीसमर्थ रचित 'दासबोध' से नित्य परायण हेतु
चुने हुए समासों का संकलन एवम् विवरण

संकलन एवम् प्रस्तुति

डॉ. मोहन ब. बांडे

प्रकाशक

राष्ट्रगुरु श्रीसमर्थ रामदास विचार मंच,
शाखा-इंदौर

: पुस्तक का नाम :

श्रीसमर्थ बोधामृत

: प्रकाशन तिथि :

दत्त जयंती, संवत् २०६३, तदनुसार ४ दिसंबर २००६

: प्रकाशक :

राष्ट्रगुरु श्री समर्थ रामदास विचार मंच (शाखा - इन्दौर)

: संकलन एवं प्रस्तुति :

डॉ. मोहन ब. बांडे

प्रथम संस्करण : २००६

सहयोग राशि : रु. ४०/-

: सम्पर्क :

श्री जयंत कुलकर्णी
'ज्योत्सना',
३ लोकमान्य नगर, इन्दौर
फोन : २४७८६०

श्री गोपालराव येवतीकर
वनवासी कल्याण परिषद्
एम.पी.नगर झोन - १
भोपाल (म.प्र.)
फोन : २५५८३९५

श्री अनिल चतुर्वेदी,
इन्दौर
मोबाइल :
९८९३८-९२९९३

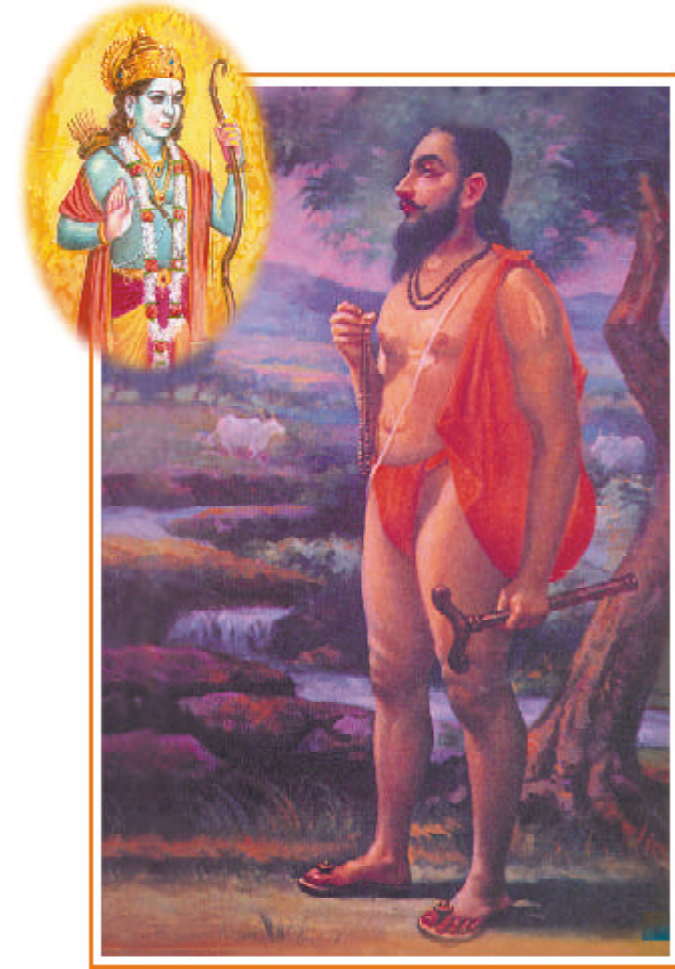
: मुद्रक :

सर्वोत्तम ऑफसेट,

जी८, स्वदेश भवन, २, प्रेस काम्पलेक्स, ए.बी.रोड, इन्दौर (म.प्र.) मोबा. ९४२५० ५६४२३

संकलनकर्ता डॉ. मोहन ब. बांडे का परिचय :

जन्म - २ अक्टूबर १९४७, इन्दौर (म.प्र.)/ शिक्षण- एम.एस-सी., पी-एच.डी.(वनस्पतिशास्त्र)
कार्यक्षेत्र - लखनऊ स्थित बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान में १९७२ से १९९३ तक वैज्ञानिक के रूप में कार्य। पुरावनस्पतिशास्त्र में अनेक शोधपत्र देश-विदेश की विज्ञान पत्रिकाओं में प्रकाशित। पुरावनस्पतिशास्त्र में शोधकार्य के लिये पॅलिओबोटैनिकल सोसायटी द्वारा सन्माननीय सदस्य के रूप में सन्मानित। १९९३ में उपरोक्त संस्थान में सहायक निदेशक के पद पर कार्यरत रहते हुए स्वेच्छा से अवकाशग्रहण।
वर्तमान निवास - १३, नारायणबाग, इन्दौर ४५२ ००४ (म.प्र.) मोबा. ९९२६६००१२४



भक्तांचेनि साभिमानें। कृपा केली दाशरथीनें।
समर्थकृपेची वचनें। तो हा दासबोध॥ २०.१०.३०
भक्ताभिमानी दाशरथी (श्रीराम) ने कृपा की, बस,
उसी समर्थ की कृपा के जो वचन वहीं यह "दासबोध" है।

भूमिका

महाराष्ट्र की सात सौ से भी अधिक वर्ष पुरानी संत परंपरा के एक दैदिप्यमान नक्षत्र श्रीसमर्थ रामदास के प्रेरणादायी जीवन और विचारों का जन-जन में प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से **राष्ट्रगुरु श्रीसमर्थ रामदास विचार मंच**, इंदौर द्वारा विगत चार वर्षों में प्रकाशित किये जा रहे ग्रंथों की शृंखला में **श्रीसमर्थ बोधामृत** के रूप में यह चौथी कृति हिन्दीभाषी पाठकों के लिये प्रस्तुत है। करीब चार वर्ष पूर्व श्रीसमर्थ के अलौकिक जीवन चरित्र के प्रकाशन के साथ इस कार्य का प्रारंभ हुआ। कुछ ही समय पश्चात् श्रीसमर्थ के प्रमुख ग्रंथ **दासबोध** का हिन्दीभाषी पाठकों से विस्तारपूर्वक परिचय कराने के उद्देश्य से **दासबोध दर्शन** का प्रकाशन हुआ। श्रीसमर्थ स्वयं विशुद्ध आध्यात्मिक धारणा के व्यक्ति होते हुए भी उनके विचारों में वर्तमान युवा पीढ़ी के लिये मार्गदर्शक ऐसे अनेक विचार हैं। इन्हीं विचारों का संकलन कर **विद्यार्थियों के श्रीसमर्थ रामदास** यह पुस्तक प्रकाशित हुई। इन सभी ग्रंथों का हिन्दीभाषी समाज ने उस्फूर्त स्वागत किया, मंच को अपना कार्य करने को नया बल मिला।

श्रीज्ञानेश्वर से लेकर श्रीसमर्थ तक महाराष्ट्र के संतों ने ईश्वर प्राप्ति के लिये प्रपंच छोड़कर वन की राह पकड़ने की बात कभी नहीं कही। सर्वसाधारण सांसारिक व्यक्ति का प्रतिदिन का जीवन ही आध्यात्मिक स्तर को प्राप्त करे और उसका नित्य का कर्तव्यपालन यही धर्म का आचरण और ईश्वर की आराधना बन जाये, इसी पर इन सभी संतों ने बल दिया है। श्रीसमर्थ का तो संपूर्ण जीवन और साहित्य ही समाजोत्थान के इस कार्य के लिये समर्पित रहा है। उनके अद्भुत जीवन चरित्र और प्रमुख ग्रंथ **दासबोध** पर दृष्टिपात करने से यह बात स्वयं स्पष्ट हो जाती है।

दासबोध को श्रीसमर्थ ने स्वयं का स्वरूप कहा है। दासबोध यह सर्वकालीन और सर्वस्पर्शी ऐसा ग्रंथ है। मराठी संतसाहित्य में इसका एक विशेष स्थान है। धर्म को ग्लानि आने पर जिस प्रकार परमेश्वर अवतार लेते हैं, उसी प्रकार से समाज

अथवा राष्ट्र को किसी भी काल में निकृष्टावस्था प्राप्त होने पर यह ग्रंथ मार्गदर्शक सिद्ध होगा इसमें संदेह नहीं है। छोटे-बड़े, संसारी, परमार्थी, राजनीतिज्ञ, व्यावहारिक ऐसे सभी के लिये समान रूप से मार्गदर्शक ऐसा यह ग्रंथ है। आज की विषम परिस्थिति में तो इसका विशेष महत्व है।

दासबोध में भिन्न-भिन्न विषयों की चर्चा करने वाले दो सौ अध्याय हैं जो 'समास' कहलाते हैं। इनमें से कुछ में विशुद्ध आध्यात्मिक विषय आये हैं तो अनेक समास हमारे नित्य के जीवन के लिये मार्गदर्शक सिद्ध हों ऐसे हैं। जनसाधारण के लिये अतिशय उपयोगी ऐसे साठ समास चुनकर उनका सरल हिन्दी में विवरण **श्रीसमर्थ बोधामृत** के रूप में प्रस्तुत है। श्रीसमर्थ ने समाज को उन्नत बनाकर राष्ट्रनिर्माण पर बल दिया है और समाज की महत्वपूर्ण इकाई है परिवार। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का जीवन उन्नत होकर उनमें प्रेम और सामंजस्य स्थापित हो सके तो यह राष्ट्र पुनश्च अपने खोये वैभव को अविलंब प्राप्त कर लेगा इसमें शंका नहीं है। इसी कारण **प्रतिदिन परिवार के सदस्य एकत्रित बैठकर एक या दो समासों का वाचन कर उन्हें आत्मसात करें और स्वयं श्रीसमर्थ द्वारा सिद्ध किये मंत्र श्रीराम जय राम जय जय राम** का कुछ देर तक जप करें, तो हमारे वर्तमान में बिखरते पारिवारिक जीवन को एक नई दिशा मिल सकेगी इसी विश्वास के साथ मंच का यह नया प्रकाशन सब के लिये प्रस्तुत है। इस प्रस्तुति में मूल मराठी ओवियों का हिन्दी भावार्थ पं. माधवराव सप्रे द्वारा किये दासबोध के हिन्दी अनुवाद पर आधारित है। इसी प्रकार, अधिकतर समासों के प्रारंभ में श्रीसमर्थ रचित 'मनाचे श्लोक' अर्थात् 'मनोबोध' से उस समास के विचारों को पूरक श्लोक दिया गया है। मूल मराठी श्लोकों का यह हिन्दी अनुवाद श्री प्र.ग. सहस्रबुद्धे द्वारा किये अनुवाद से लिया गया है। हिन्दी भाषी समाज **राष्ट्रगुरु श्रीसमर्थ रामदास विचार मंच** के इस प्रयास का स्वागत करेगा इस विश्वास के साथ,

श्री गुरुनानक जयंती
कार्तिक पूर्णिमा
संवत् २०६३
१५, संवाद नगर, इंदौर (म.प्र.)

कृष्णकुमार अहाना
संपादक - देवपुत्र
अध्यक्ष - राष्ट्रगुरु श्रीसमर्थ रामदास विचार मंच,
इंदौर (म.प्र.)

दशक १

समास १

ग्रंथ परिचय

महाज्ञान भांडार प्राप्ति हुई है।
करो साधना यत्नपूर्ति तभी है।
कथा को सुनोगे उसी में रमोगे।
करो संतसत्संग तो धन्य होगे।।

- मनोबोध . २०२.

हमारे प्राचीन ग्रंथों का प्रारंभ ईशस्तवन से करने की परंपरा है, परंतु श्रीसमर्थ रचित दासबोध का प्रारंभ वक्ता अथवा रचयिता और श्रोता अथवा पाठकों के बीच संवाद के साथ होता है। दासबोध सुनने आये श्रोतागण पूछते हैं -

यह कौन ग्रन्थ है। इसमें क्या कहा है। और इसके श्रवण करने से क्या प्राप्त होता है? ॥१॥ श्रीसमर्थ उत्तर देते हैं - इस ग्रन्थ का नाम दासबोध है। इसमें गुरु और शिष्य का संवाद है और इसमें स्पष्ट रूप से भक्तिमार्ग कहा गया है ॥२॥ इस ग्रन्थ में नवविधा भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का लक्षण और विशेष रूप से अध्यात्मनिरूपण किया गया है ॥३॥ इस ग्रन्थ का अभिप्राय यह है कि भक्ति के योग से मनुष्य निश्चित रूप से ईश्वर को प्राप्त करता है ॥४॥ अनेक ग्रन्थों की सम्मति, उपनिषद्, वेदान्त, श्रुति, शास्त्र और मुख्य रूप से आत्मप्रतीति (अर्थात् स्वयं श्रीसमर्थ ने परमार्थ के मार्ग में जो अनुभव प्राप्त किया), इनके आधार पर इस ग्रन्थ की रचना हुई है ॥५॥ ऐसा कौन पतित है जो भगवद्वाचन में अविश्वास करे? इस ग्रन्थ में जो कहा गया है, वह भगवद्वाक्य से विरहित नहीं है ॥२१॥

श्रोताओं के प्रश्न का इस प्रकार उत्तर देने के पश्चात् श्रीसमर्थ अब इस ग्रंथ के श्रवण का फल बताते हुए कहते हैं -

प्रथम तो इस ग्रन्थ के श्रवण से हमारा आचरण उसी क्षण बदल जाता है और संशय का मूल एकदम टूट जाता है ॥२८॥ सुगम मार्ग मिल

जाता है। दुर्गम साधन की आवश्यकता नहीं होती। सायुज्यमुक्ति का रहस्य सहज ही मालुम हो जाता है ॥२९॥ इस ग्रन्थ के श्रवण से अज्ञान, दुःख और भ्रान्ति का नाश हो जाता है तथा शीघ्र ही ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है ॥३०॥ इसे पढ़कर जो आलसी हैं वे उद्योगी हो जाते हैं। पापी पश्चाताप करते हैं। भक्तिमार्ग की निंदा करने वाले उसकी प्रशंसा करने लगते हैं ॥३३॥ बद्ध अर्थात् संसारी मनुष्य, मुमुक्षु, अर्थात् मोक्ष की इच्छा करने वाले बन जाते हैं, जो मूर्ख हैं वे अतिदक्ष हो जाते हैं और अभक्त लोग भी, भक्तिमार्ग को अपनाकर, मोक्ष पाते हैं ॥३४॥ इस ग्रन्थ से विभिन्न प्रकार के दोष नष्ट हो जाते हैं। पतित, अर्थात् पापी, पावन, अर्थात् पवित्र हो जाते हैं। और इसके श्रवणमात्र से प्राणी उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥३५॥ ऐसी इसकी फलश्रुति है। इसे सुनने से अधोगति का नाश होता है और मन को विश्राम तथा समाधान मिलता है ॥३७॥ और सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि, जिसकी जैसी भावना हो, उसको वैसी सिद्धि। पूर्वग्रह से दूषित शंकालु वृत्ति से कोई इसे पढ़ेगा तो उसे वही प्राप्त होगा ॥३८॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक १

समास २

गणेश वंदना

गणाधीश जो ईश है सद्गुणों का ।
गुणी रूप प्रारंभ है निर्गुणी का ॥
स्मरें रूप चारों महाशारदा के ।
चलें पन्थ आकल्प श्रीरामजी के ॥

- मनोबोध . १.

हे ॐकाररूप सर्वसिद्धिफलदायक, अज्ञान और भ्रान्ति के छेदक, बोधरूप गणनायक, आपको नमस्कार है ॥१॥ मेरे अन्तःकरण में विराजिये और सदासर्वदा वास कीजिये। तथा कृपाकटाक्ष करके मुझ वाक्यशून्य से बुलवाइये ॥२॥ मंगलनिधि, अर्थात् शुभ की खान, गणेशजी की वन्दना कर कार्य करने से सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं और किसी प्रकार की विघ्नबाधा नहीं आती ॥६॥

गणेशजी का सगुण रूप बहुत सुंदर और मनोहारी है। उनके नृत्य करते ही सारे देवता स्तब्ध होकर रह जाते हैं ॥८॥ वे सदा मद से छके होते हैं और हर्ष से सुप्रसन्नवदन होकर अति उल्लसित रहते हैं ॥९॥ चौदह विद्याओं का स्वामी, न्हस्वलोचन, अर्थात् छोटी छोटी आंखें, हिला रहा है। कोमल और लचीले कान फड़फड़ा रहा है ॥१३॥ उसका रत्नों से जड़ा हुआ मुकुट झिलमिला रहा है। उसमें अनेकानेक रंगों का तेज पड़ रहा है। गणेशजी के कानों में कुंडल चमक रहे हैं और उन पर जड़े हुए नीलमणी झलक रहे हैं ॥१४॥ गणेशजी की थुलथुली तोंद हिलती है। उस पर नागबन्ध अर्थात् सर्प की मेखला लपेटी हुई है। करधनी में क्षुद्र घंटिकाएं अर्थात् छोटी छोटी घंटियां मंद मंद स्वर में झंकार कर रही हैं ॥१६॥ गणेशजी चतुर्भुज और लंबोदर हैं। वे पीतांबर पहने हैं। पेट पर लिपटा भुजंग फुत्कार कर रहा है ॥१७॥ गणेशजी के हाथों में परशु और कमल शोभायमान है। वे तीक्ष्ण और तेजस्वी अंकुश धारण किये हैं। उनके एक हाथ में मोदक है; उस पर उनकी

अतिशय प्रीति है ॥२०॥ चपलता में अग्रगण्य ऐसे गणेशजी की सुलक्षण मूर्ति सुंदरता की खान है ॥२॥ नृत्यरत गणेशजी के पैरों की नूपुर झन-झन बज रही है पैजन की ध्वनि झन-झन कर रही है। घुंघरुओं से सजे उनके दोनों पैर मनोहर दिखाई दे रहे हैं ॥२३॥ गणेशजी के कारण शंकरसभा में शोभा आ गई है। दिव्य अम्बर की प्रभा छा गई है। साहित्य विषय में निपुण अष्टनायिकाएं भी गणेशजी के साथ सभा में उपस्थित हैं ॥२४॥ ऐसे जो गणपति सर्वांगसुंदर और सकल विद्याओं का आगर हैं, उन्हें मेरा भावयुक्त साष्टांग नमस्कार है ॥२५॥ गणेशजी के रूप का वर्णन करते ही भ्रान्त लोगों की मति प्रकाशित हो जाती है। और गुणानुवाद श्रवण करते ही उन पर सरस्वती प्रसन्न होती है ॥२६॥ जब ब्रह्मा आदि देवता भी उस गणपति की वन्दना करते हैं तब बेचारे मनुष्य की क्या गिनती है? अस्तु; जो मन्दमति प्राणी हों, वे गणेशजी का चिंतन करें ॥२७॥ वे परम समर्थ हैं। सारे मनोरथ पूर्ण करते हैं। यह बात अनुभवसिद्ध है कि उनका भजन करने से सारे कार्य सिद्ध होते हैं। कलियुग में चंडी और विनायक, मुख्य देवता हैं ॥२९॥ यहां पर उस मंगलमूर्ति श्रीगणेश की स्तुति, परमार्थ की वांछा मन में रखकर, मैंने यथामति की है ॥३०॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक १

समास ३

शारदा-स्तुति

वदे नम्र भाषा करे नित्य नेकी ।
सदा सत्यवादी रहे जो विवेकी ॥
कभी झूठ बोले नहीं, शुद्ध वाणी ।
वही धन्य है राम का दास प्राणी ॥

- मनोबोध . ५३.

अब वेदमाता, ब्रह्मसुता, शब्दमूला, महामाया श्रीशारदा की वंदना करता हूँ ॥१॥ जो शब्द-स्फूर्ति को उठाती है, जो वैखरी द्वारा अपार वचन बुलाती है, जो शब्द का अभ्यन्तर, भीतर का भाव, प्रगट कर देती है ॥२॥ जो योगियों की समाधि है, जो निश्चयी लोगों की कृतबुद्धि, अथवा दृढ़ता है, जो स्वयं विद्यारूप होकर अविद्या की उपाधि को तोड़ डालती है ॥३॥ जो महंतों की शांति है, जो ईश्वर की निजशक्ति है, जो ज्ञानियों की विरक्ति है और जो नैराश्य की शोभा है ॥५॥ जो अनंत ब्रह्मांड रचती हैं, लीलाविनोद से ही बिगाड़ती है तथा जो स्वयं आदिपुरुष में छिपी रहती है ॥६॥ जो सारे संसार-नाटक की अंतर्कला, अर्थात् मूलसूत्र है। जो चित्शक्ति की निर्मल स्फूर्ति है और जिसके कारण ही स्वानंद का सुख तथा ज्ञानशक्ति मिलती है ॥८॥ जो अव्यक्त पुरुष (परब्रह्म) की व्यक्तता है। जो विस्तार से बढ़ी हुई (परब्रह्म की) इच्छाशक्ति है, जो कलिकाल की नियन्ता, अर्थात् नियमन करने वाली और सद्गुरु की कृपा है ॥११॥ जो परमार्थ मार्ग का विचार है, जो सारासार का निश्चय बतला देती है और जो शब्द बल से भवसिंधु के पार लगा देती है ॥१२॥ इस प्रकार अकेली माया शारदा ने अनेक वेष धारण किये हैं। वह स्वयंसिद्ध होकर अंतःकरण में, चतुर्विधा रीति से, अर्थात् परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी, इन चार रूपों में प्रगट होती है ॥१३॥ जो ब्रह्मादिकों की जननी है, विष्णु और महादेव जिससे हुए हैं, सृष्टि की रचना और तीनों लोक

जिसका विस्तार है ॥१५॥ जो योगियों के ध्यान में, साधकों के चिंतन में और सिद्धों के अन्तःकरण में समाधिरूप से वास करती है ॥१७॥ जो निर्गुण की पहचान है, अनुभव की निशानी है और जो घट घट में व्याप्त है ॥१८॥ जो वेदशास्त्रों की महिमा है, जो निरुपम की उपमा है और जिसके योग से परमात्मा 'परमात्मा' कहलाता है ॥२०॥ जो नाना प्रकार की विद्या, कला, सिद्धि, निश्चयात्मक बुद्धि और सूक्ष्म वस्तु का शुद्ध ज्ञानस्वरूप है ॥२१॥ जो हरिभक्तों की भक्ति है, जो अन्तर्निष्ठों की अन्तर्दशा है और जो जीवनमुक्तों की सायुज्यमुक्ति है ॥२२॥ जो भी कुछ दृष्टि से देखा जाता है, शब्द से पहचाना जाता है और मन को जिसका भास होता है, वह सारा उसी का रूप है ॥२४॥ स्तवन, भजन, भक्ति और भाव, इनमें से किसी को भी माया के बिना ठौर नहीं है, इस वचन का अभिप्राय अनुभवी लोग जानते हैं ॥२५॥ जो बड़ी से बड़ी है, जो ईश्वर का ईश्वर है उसको, उसी का एक अंश वह मैं, नमस्कार करता हूँ ॥२६॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक १

समास ४

सद्गुरु-स्तुति

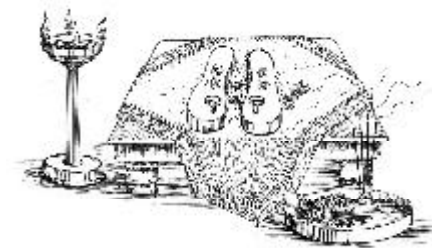
महाभक्त ज्ञानी विवेकी विरागी।
वृपालु दयालु क्षमावान योगी।।
सदा दक्ष व्युत्पन्न चातुर्य ज्ञाता।
जिसे देखते ही समाधान होता ।।

- मनोबोध . १८३.

अब सद्गुरु का वर्णन कैसे करूं? जहां माया स्पर्श नहीं कर सकती वह स्वरूप मुझ अज्ञान को कैसे जान पड़े? ॥१॥ जो (सद्गुरु परब्रह्म) जाना नहीं जा सकता और जिसके विषय में श्रुति नेति-नेति कहती है, उसका वर्णन करने के लिये मुझ मूर्ख की मति का कहां ठिकाना? ॥२॥ मुझे यह विषय अगम्य है इस कारण दूर से ही मेरा नमस्कार है। हे गुरुदेव! मुझे वह शक्ति दो जिससे मैं आपके वास्तविक स्वरूप को समझ सकूं ॥३॥ जिस प्रकार अपने भाव के अनुसार मन में देवता का ध्यान किया जाता है, उसी प्रकार अब मैं इस स्तवन में सद्गुरु की स्तुति करता हूं ॥७॥ हे सद्गुरुराज, आपकी जय हो, जय हो। हे विश्वम्भर विश्वबीज, परम पुरुष, मोक्षध्वज और दीनबन्धु, आपके ही अभयरूप कर से यह दुर्निवार माया इस प्रकार मिट जाती है जैसे सूर्यप्रकाश से अंधेरा भाग जाता है ॥८-९॥ सूर्य अंधकार का निवारण करता है, परन्तु रात होने पर फिर जगत में अंधकार छा जाता है ॥१०॥ परन्तु हमारा सद्गुरु स्वामी वैसा नहीं है। वह जन्म मृत्यु, अर्थात् आवागमन का नाश करता है और अज्ञानरूप अंधकार को जड़ से मिटा देता है ॥११॥ सुवर्ण का लोहा कभी बन नहीं सकता, इसीप्रकार गुरु का भक्त कभी सन्देह में नहीं पड़ता ॥१२॥ पारस लोहे को सुवर्ण बना सकता है, परन्तु अपने समान अर्थात् पारस नहीं बना सकता, परन्तु सद्गुरु का भक्त उपदेश द्वारा अन्यों को भी अपने समान बना देता है, स्वयं पारस समान बन जाता है। इस कारण सद्गुरु को पारस की उपमा नहीं दी

जा सकती ॥१५-१६॥ सद्गुरु को सागर की उपमा भी उचित नहीं, कारण, सागर अत्यंत खारा है। वैसे ही सद्गुरु को क्षीरसागर की उपमा भी दे नहीं सकते, कारण, क्षीरसागर भी कल्पान्त में शेष नहीं रहेगा ॥१७॥ सद्गुरु को मेरू की उपमा देना भी उचित नहीं, कारण, वह जड़ पाषाण रूप है। सद्गुरु वैसा नहीं है - वह दीन जनों के लिये कोमल है ॥१८॥ इसी प्रकार सद्गुरु को आकाश, धरती, सूर्य, शेष, जल अथवा अमृत की भी उपमा नहीं दी जा सकती ॥१९-२४॥ सद्गुरु को कल्पतरू कहें तो भी ठीक नहीं, क्योंकि सद्गुरु का रूप कल्पनातीत है ॥२५॥ (सद्गुरु की प्राप्ति हो जाए तो फिर) जब मन में चिन्ता ही नहीं तो चिन्तामणि को कौन पूछता है? निष्काम के लिये कामधेनु का क्या महत्व? ॥२६॥ सद्गुरु को यदि लक्ष्मीवन्त कहें तो लक्ष्मी नाशवान् है। जिसके द्वार पर मोक्षलक्ष्मी खड़ी रहती है, उसे इस नाशवान् लक्ष्मी से क्या काम? ॥२७॥ स्वर्गलोक और इन्द्र-संपत्ति की कालान्तर में विटंबना हो जाती है; परन्तु सद्गुरुकृपा अचल है ॥२८॥ हरि, हर और ब्रह्मा आदि सब नाश हो जाते हैं। परन्तु सर्वदा अवनाशी ऐसा केवल एक सद्गुरुपद ही है ॥२९॥ उसे किसकी उपमा दी जाए? सारी सृष्टि तो नाशवंत है। वहां पंच-भौतिक उठापटक किसी काम की नहीं ॥३०॥ इसी कारण सद्गुरु का वर्णन हो नहीं सकता। “सद्गुरु का वर्णन हो नहीं सकता” यह कहना ही मेरा सद्गुरु वर्णन है। परन्तु यह बात अर्थात् अन्तरस्थिति, अन्तर्निष्ठ अर्थात् अनुभवी ही जानते हैं ॥३१॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक १

समास ५

संत-स्तव

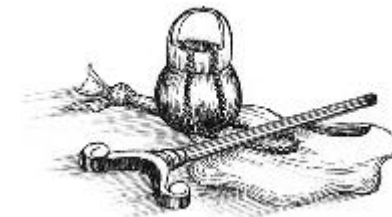
सही भक्त विज्ञानवेत्ता विरागी ।
सदा निश्चयात्मा सुखानन्द भोगी ॥
उसे देखते स्पर्श से पुण्य आता ।
तथा उक्ति से सर्व संदेह जाता ॥

- मनोबोध . १३३.

अब संत-सज्जनों की वन्दना करूंगा, जो परमार्थ के अधिष्ठान, अर्थात् आश्रय हैं और जिनके द्वारा गुह्य ज्ञान मनुष्यों में प्रगट होता है ॥१॥ जो वस्तु (अर्थात् ब्रह्म) परम दुर्लभ है, अलभ्य है, वही संतसंग से सुलभ हो जाती है ॥२॥ वह वस्तु (ब्रह्म) प्रगट ही रहती है, परन्तु देखने पर किसी को दिखाई नहीं देती। अनेक प्रकार के साधन, परिश्रम करने पर भी नहीं मिलती ॥३॥ जो दीपक से भी दिखाई नहीं देती, नाना प्रकार के प्रकाश में जिसका पता नहीं लगता, नेत्रों में अंजन लगाने से भी जो दृष्टि के सम्मुख नहीं आती ॥५॥ सोलह कला वाला पूर्ण चन्द्र और कलाराशि तीव्र सूर्य भी जिसे दिखा नहीं सकता। जिस सूर्य के प्रकाश में ऊन का रोयां भी दिख पड़ता है, अणुरेणु समान सूक्ष्म पदार्थों को भी देखा जा सकता है ॥७॥ चिरी हुई बाल की नोक को भी जो सूर्यप्रकाश दिखा सकता है, वह भी उस वस्तु को दिखा नहीं सकता, परन्तु संतसज्जनों की कृपा से वही वस्तु साधकों को प्राप्त हो जाती है ॥८॥ जहां (परब्रह्म के विषय में) सारे आक्षेप समाप्त हो जाते हैं, जहां प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं, जिस निजवस्तु के संबन्ध में तर्क करते करते स्वयं तर्क मंद हो जाता है ॥९॥ जहां विवेक का संकोच हो जाता है, शब्द लड़खड़ाता है और मन की गति काम नहीं देती ॥१०॥ वेद ने सभी कुछ प्रगट कर दिया है; परन्तु वह वेद भी वह वस्तु किसी को दिखा नहीं सकता ॥१२॥ वही वस्तु संतसंग से, स्वानुभव, अर्थात् अपने अनुभव के द्वारा ज्ञात हो जाती है। ऐसे संतों की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है? ॥१३॥ इस माया का खेल विचित्र है, परन्तु

वह भी जिस वस्तु से परिचय कराने में समर्थ नहीं, उसी मायातीत अनन्त की राह संत बताते हैं ॥१४॥ जिस वस्तु का वर्णन नहीं किया जा सकता, वही 'वस्तु' संतों का रूप है। इसी कारण संत अनिर्वचनीय हैं ॥१५॥ संत आनन्द के घर हैं, सच्चे सुख के स्वरूप हैं और संत नाना प्रकार के संतोष का मूल हैं ॥१६॥ संत विश्रान्ति की भी विश्रान्ति हैं, तृप्ति की भी तृप्ति हैं। अथवा संत ही भक्ति के परिणाम हैं ॥१७॥ संत धर्म के धर्मक्षेत्र, स्वरूप के सत्पात्र और पुण्य की पवित्र पुण्यभूमि हैं ॥१८॥ संत समाधि के मंदिर और विवेक भंडार हैं। वे सायुज्यमुक्ति के अधिष्ठान हैं ॥१९॥ संत सत्य के निश्चय, सार्थक के जय, प्राप्ति के समय और सिद्धरूप हैं ॥२०॥ संत ऐसे श्रीमंत हैं जो मोक्षश्री से अलंकृत रहते हैं। उन्होंने असंख्य दरिद्री (अज्ञानी) जीवों को चक्रवर्ती (ज्ञानी) बना दिया है ॥२१॥ अन्य लोग, जो समर्थ और उदार हैं, अत्यंत दानशूर हैं, वे ज्ञानरूप धन नहीं दे सकते ॥२२॥ कितने ही चक्रवर्ती महाराजा हो गये हैं और आगे भी होंगे, परन्तु कोई भी सायुज्यमुक्ति नहीं दे सकता ॥२३॥ तीनों लोकों में जो दान नहीं होता, वही दान सज्जन संत करते हैं। ऐसे संतों की महिमा क्या वर्णन की जाए? ॥२४॥ जो तीनों लोक से भिन्न है और वेदश्रुतियों से जो नहीं जाना जाता, वही परब्रह्म संतों के प्रसन्न होने पर अन्तःकरण में आ जाता है ॥२५॥ ऐसी संतों की महिमा है। उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाए, वह कम ही है। उनके द्वारा मुख्य परमात्मा प्रगट होता है ॥२६॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक १

समास ९

परमार्थ-स्तवन

परमार्थ का धनी राज्यधारी,
परमार्थ बिना भिखारी है।
ऐसे इस परमार्थ की तुलना
अन्य किससे हो सकती है ॥

दासबोध . १-९-२३.

अब इस परमार्थ का स्तवन करता हूँ, जो साधकों का मुख्य स्वार्थ है। परमार्थ-योग सब से बड़ा है ॥१॥ यह है तो सुगम, परंतु उनके लिये दुर्गम है जिनको सत्समागम का रहस्य मालुम नहीं ॥२॥ यह परमार्थ अर्थात् परब्रह्म सार का भी मुख्य सार है, वह अखंड, अक्षय और अपार है। कुछ भी करें, तो भी चोर उसे चुरा नहीं सकते ॥६॥ इसे न राजभय होता है, न अग्निभया श्वापदभय की तो वहां कोई बात ही नहीं है ॥७॥ परमार्थ अर्थात् परब्रह्म हिलता नहीं, अपना स्थान नहीं छोड़ता, कालान्तर में भी नहीं डिगता, जहां का वहां ही रहता है ॥८॥ ऐसी यह मुख्य धरोहर है, वह न कभी बदलती है और न कभी कम ज्यादा होती है ॥९॥ यह परमार्थ न घिसता है न अदृश्य होता है। परन्तु गुरुअंजन के बिना देखने से वह दिखाई देता भी नहीं ॥१०॥ पहले भी जो समर्थ योगी हो गये उनका भी यही मुख्य स्वार्थ था। यह परम गुह्य है, इसीलिये परमार्थ कहलाता है ॥११॥ जिसने ढूँढकर देखा है, उसी को यह अर्थ (परमार्थ) मिला है। अन्यों को, यह होते हुए भी जन्मजन्मांतरों के लिये अलभ्य हो गया ॥१२॥ इस परमार्थ की अपूर्वता तो देखो कि, इसे प्राप्त कर लेने पर जन्ममृत्यु की बात नहीं है और जिसके द्वारा सायुज्यता का पद तुरन्त ही प्राप्त हो जाता है ॥१३॥

परमार्थ के विवेक से माया दूर हो जाती है, सारासार विचार ज्ञात हो जाता है और अन्तःकरण में परब्रह्म का ज्ञान हो जाता है ॥१४॥ जहां उस सर्वत्र व्याप्त परमात्मा का ज्ञान हो गया और उसी में इस ब्रह्मांड का भी (ज्ञान से) लय हो गया, वहां पंचभूतों का यह खेल तुच्छ मालुम होने लगता

है ॥१५॥ अन्तःकरण में ब्रह्मस्थिति के समाते ही सन्देह ब्रह्मांड के बाहर चला जाता है और दृश्य पदार्थ जीर्ण-जर्जर होकर बदरंग दिखाई देते हैं ॥१७॥ ऐसा यह परमार्थ है। जो इसे करता है, उसका यह मुख्य स्वार्थ है। यह श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ है, इसका वर्णन कहां तक किया जाए? ॥१८॥ परमार्थ से ब्रह्मादिकों को विश्राम मिलता है और योगीजन परब्रह्म में लीन हो जाते हैं ॥१९॥ सिद्ध, साधु और महानुभावों के लिये परमार्थ विश्रामस्थान है और अंत में सत्त्वगुणी जड़ पुरुषों के लिये भी, सत्संग से, यह सुलभ है ॥२०॥ परमार्थ ही जन्म का सार्थक है, परमार्थ संसार में तारक हैं, परमार्थ धार्मिकों को श्रेष्ठ लोक की प्राप्ति करा देता है ॥२१॥ जो परमार्थी है वही राज्यधारी, अर्थात् राजा है। जिसके पास परमार्थ नहीं वही भिखारी है। इस परमार्थ की तुलना किसके साथ की जा सकती है? ॥२३॥ जब अनंत जन्मों का पुण्य एकत्रित होता है तभी परमार्थ बनता है और परमात्मा का अनुभव प्राप्त होता है ॥२४॥ जिसने परमार्थ पहचान लिया उसने जन्म सार्थक किया, अन्य लोग, जो पापी हैं, कुल का क्षय करने के लिये ही जन्म लिये हैं ॥२५॥ अस्तु, भगवान को प्राप्त किये बिना जो संसार का व्यर्थ परिश्रम करता है, उस मूर्ख का मुंह भी नहीं देखना चाहिए ॥२६॥ भले आदमी को चाहिए कि वह परमार्थ का सेवन कर शरीर सार्थक करे और हरिभक्ति कर पूर्वजों का उद्धार करे ॥२७॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक १

समास १०

नरदेह-स्तवन

नरदेह मिली है बड़े भाग्य से
अनेक पुण्यकर्मों का फल ।
सन्मार्ग के पथ पर निकल पड़ो तो
उसमें भी है भाग्य सफल ॥

- दासबोध . २. ४. १.

यह नरदेह धन्य है, धन्य है! (नरदेह कहने में स्त्री-पुरुष दोनों का समावेश हो जाता है। परमार्थ में नर-नारी ऐसा भेद नहीं होता)। इसकी अपूर्वता तो देखो कि इसके द्वारा जो परमार्थ की इच्छा की जाती है, वह सब पूर्ण होती है ॥१॥ इस नरदेह के ही योग से कोई भक्ति में लगे हैं और कोई परम विरक्त होकर गिरिकन्दराओं में निवास करते हैं ॥२॥ कोई तीर्थाटन करते हैं, कोई पुरश्चरण करते हैं और कोई निष्ठावान बन कर अखंड नामस्मरण करते हैं ॥३॥ कोई तपस्या करने लगे, कोई बहुत अच्छे योग-अभ्यासी हुए और कोई वेदअध्ययन कर वेदशास्त्र में व्युत्पन्न हुए ॥४॥ किसी ने हठयोग के द्वारा देह को अतिशय कष्ट दिया और किसी ने भाव के बल पर परमात्मा की प्राप्ति की ॥५॥ कोई विख्यात महानुभाव हुए, कोई प्रसिद्ध भक्त कहलाये और कोई सिद्ध बनकर अकस्मात् आकाश में संचार करने लगे ॥६॥ कोई तेज में तेज ही हो गये, कोई जल में मिल गये और देखते देखते वायुस्वरूप में अदृश्य हो गये ॥७॥

ऐसे हठनिग्रही और निश्चयी सिद्ध लाखों हो गये, जिन पर अनेक सिद्धियों की कृपा थी ॥११॥ कोई मनोसिद्ध, कोई वाचासिद्ध, कोई अल्पसिद्ध, कोई सर्वसिद्ध - ऐसे नाना प्रकार के विख्यात सिद्ध हो गये ॥१२॥ कोई नवविधा भक्तिरूपी राजपंथ से गये और परलोक का निजस्वार्थ (परमार्थ) प्राप्त कर लिया तथा कोई योगी गुप्त पंथ से ब्रह्मभुवन पहुंचे ॥१३॥ कोई वैकुण्ठ को गये, कोई सत्यलोक में रहे और कोई शिवरूप बन कर कैलाश में बैठे ॥१४॥ कितने ही नरदेहधारी इन्द्रलोक में इन्द्र हुए, कितने ही

पितृलोक में जा मिले, कोई तारागणों में बैठ गये और कोई क्षीरसागर में जा बसे ॥१५॥ कोई सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य इन चार प्रकार की मुक्तियों का अपनी इच्छा के अनुसार, सेवन कर रहे हैं ॥१६॥ ऐसे अनन्त सिद्ध, साधु और संत अपने हित में प्रवृत्त हुए हैं। यह सब नरदेह का प्रताप है। इसका कहां तक वर्णन किया जाये ॥१७॥ इस नरदेह के ही आधार से, नाना साधनों के द्वार से और विशेष कर सारासार विचार से बहुतेरे मुक्त हो गये ॥१८॥ इस नरदेह के ही माध्यम से बहुत लोग उत्तम पद पा चुके और अहंता छोड़कर स्वानन्द से सुखी हो गये ॥१९॥ मनुष्यदेह पाकर ही इन सबका संशय नष्ट हुआ और वे लोग सद्गति को प्राप्त हुए ॥२०॥ इसीलिये नरदेह श्रेष्ठ है। इसी के द्वारा यमयातना मिटती है ॥२४॥ नरदेह स्वाधीन है। अन्य देहों के समान यह पराधीन नहीं है, परंतु इसे परोपकार में लगाकर कीर्तिरूप से जगत् में जीवित रहना चाहिए ॥२५॥ जो शरीर से सब प्रकार से निरोगी होते हुए भी परमार्थ बुद्धि भूले हुए हैं, वे मूर्ख मायाजाल में कैसे फंसे हुए हैं ॥३३॥ मिट्टी के घरों को इन मुखों ने अपना मान रखा है, परंतु उन्हें यह नहीं मालुम कि इन घरों पर बहुतों का अधिकार है ॥३४॥ चूहा, छिपकली, मख्खी, मकड़ी, इत्यादि अनेकों का यह घर होता है ॥३५॥ इस प्रकार सभी कहते हैं, घर हमारा है और ये मूर्ख मनुष्य भी कहते हैं कि घर हमारा ही है। परन्तु अंत में, कोई आपत्ति आ जाने पर, घर ही नहीं, किंतु ग्राम और देश भी छोड़कर भाग जाते हैं ॥४७॥

इसी प्रकार हमारा शरीर भी किसी एक का नहीं है, किंतु अनेकों का है; तथापि ये मूर्ख कहते हैं, हमारा है। यह शरीर अनेक जीवों का खाद्य है ॥६०॥ देह यदि परमार्थ में लगायी तभी तो यह सार्थक है, अन्यथा नाना आघातों और मृत्युपथ के द्वारा इसे व्यर्थ ही गया समझना चाहिए ॥६१॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक २

समास १

मूर्ख लक्षण

खड़ा कामना वृक्ष के ठीक नीचे ।
पिटे भाल को दुःख ही दुःख सोचे ॥
रखो कामना जो वही प्राप्त होगा ।
महामूर्ख को सौख्य कैसे मिलेगा ॥

- मनोबोध .६१.

अब सद्गुरु चरणों की वन्दना कर और रघुनाथजी का स्मरण कर, त्याग करने के लिये, मूर्ख के लक्षण बताता हूँ ॥३॥ जो प्रापंचिक जन हैं, जिन्हें आत्मज्ञान नहीं है और जो बिलकुल अज्ञानी हैं, उनके ये लक्षण हैं ॥७॥

जिनके पेट से जन्म लिया, उन्हीं का जो विरोध करता है, जिसने स्त्री को ही अपना सर्वस्व मान लिया है, वह मूर्ख है ॥८॥ जो अपने मुंह अपनी प्रशंसा करता है, स्वदेश में ही रहकर विपत्ति भोगता है और व्यर्थ पूर्वजों की कीर्ति वर्णन करता है वह मूर्ख है ॥९॥ जो अपनों को छोड़ दूसरों से मित्रता करता है, रात में दूसरे की बुराई करता है, वह मूर्ख है ॥१४॥ मान अथवा अपमान जो स्वयं प्रगट करता है और सात व्यसनों में (जारण, मारण, विध्वंसन, वशीकरण, स्तंभन, मोहन और उच्चाटन) जिसका मान लगा रहता है, वह मूर्ख है ॥१६॥ जो दूसरे की आशा से निश्चिंत होकर प्रयत्न छोड़ देता है और आलस्य में ही संतोष मानता है, वह मूर्ख है ॥१७॥ अपने से श्रेष्ठ हैं उनके साथ जो अति निकटता दिखाता है और उपदेश करने पर बुरा मानता है, वह मूर्ख है ॥१९॥ जो अपनी नहीं सुनता उसे सिखाता है, बड़ों के सम्मुख अपना ज्ञान प्रगट करता है और जो श्रेष्ठ पुरुषों को धोखा देता है, वह मूर्ख है ॥२०॥ जो विषयोपभोग में निर्लज्ज बन गया है और मर्यादा छोड़कर निरंकुश आचरण करता है, वह मूर्ख है ॥२१॥ जहां अपना सम्मान हो वहां बार-बार जाता है और

जो अपने मान-अभिमान की रक्षा नहीं कर पाता, वह मूर्ख है ॥२४॥ जो घरवालों पर दांत पीसता है और बाहर हीन-दीन होकर रहता है, वह मूर्ख है ॥२८॥ जो परोपकार करना नहीं जानता, भलाई के बदले बुराई करता है और करता थोड़ा है, परंतु बतलाता बहुत है, वह मूर्ख है ॥३०॥ जो क्रोधी, अधिक खाने वाला, मलिन और मन में कुटिल है, जिसके पास धैर्य नहीं, वह मूर्ख है ॥३१॥ जिसके पास विद्या, वैभव, धन, पुरुषार्थ, सामर्थ्य और मान आदि कुछ नहीं है - कोरा अभिमान ही दिखाता है, वह मूर्ख है ॥३२॥ जैसी करनी वैसी भरनी-यह तत्व जिसे पता नहीं, वह मूर्ख है ॥४१॥ दूसरे के दुःख में सुख मानता है, दूसरे के संतोष में दुःख मानता है और गई वस्तु का शोक करता है, वह मूर्ख है ॥४५॥ जो जगदीश को छोड़कर मनुष्य का भरोसा करता है और बिना जीवन सार्थक किये अपनी आयु व्यर्थ खोता है, वह मूर्ख है ॥५४॥ संसार में दुःख प्राप्त होने पर जो ईश्वर को गाली देता है और जो मित्र के दोष अन्यों को बताता है, वह मूर्ख है ॥५५॥ जो अनीति से धन जोड़ता है, धर्म, नीति और न्याय का त्याग कर देता है और अपने संगी-साथियों को अपने से दूर कर देता है, वह मूर्ख है ॥५९॥ लक्ष्मी प्राप्त हो जाने पर जो पिछली पहचान भूल जाता है, जो देवताओं और ब्राह्मणों पर अपना प्रभाव जमाने का प्रयास करता है, वह मूर्ख है ॥६८॥ जब तक अपना काम हो तभी तक बहुत नम्रता धारण किये रहता है परंतु दूसरों का काम नहीं करता, वह मूर्ख है ॥६९॥ जो पुस्तकों को व्यवस्थित रीति से नहीं रखता, उन्हें न स्वयं पढ़ता है न अन्यों को पढ़ने हेतु देता है, वह मूर्ख है ॥७०, ७१॥

ऐसे ये मूर्खों के (कुछ) लक्षण हैं। इन्हें सुनने से चतुरता आती है, विचारवान लोग इन्हें मन लगाकर पढ़ते हैं ॥७२॥ लक्षण तो अनेक हैं, परंतु यहां कुछ लक्षण त्याग करने के लिये, अपनी बुद्धि अनुसार, कहे हैं - श्रोतागण मुझे क्षमा करें ॥७३॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक २

समास २

उत्तम लक्षण

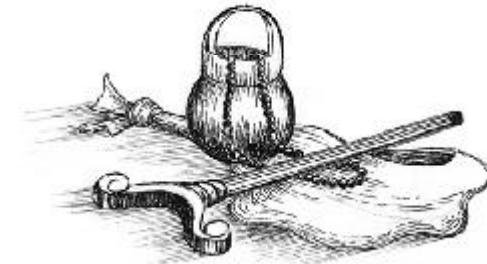
कथा राम की कीर्तनों में सुनाओ ।
कहो मग्नता से स्वयं को भुलाओ ॥
पर द्रव्य को मृत्तिकाखण्ड मानो ।
परस्त्री सदा वंघ माता ही जानो ॥

- मनोबोध . १०३.

श्रोतागण सावधान होकर सुनें। अब उत्तम गुणलक्षण बताता हूं, इन गुणों से सर्वज्ञता आती है ॥१॥ बिना पूछे रास्ता चलना नहीं चाहिये, बिना पहचाने फल खाना नहीं चाहिये, पड़ी हुई वस्तु एकदम उठाना नहीं चाहिये ॥२॥ बहुत वाद-विवाद करना नहीं चाहिये, पेट में कपट रखना नहीं चाहिये, बिना खोज-बिन किये कुलहीन स्त्री से विवाह करना नहीं चाहिये ॥३॥ मनुष्यों से नम्रता तोड़ना नहीं चाहिये, पापद्रव्य जोड़ना नहीं चाहिये, पुण्यमार्ग कभी छोड़ना नहीं चाहिये ॥६॥ निंदा और द्वेष करना नहीं चाहिये, बुरा साथ रखना नहीं चाहिये, परधन और परस्त्री बलात् हरण करना नहीं चाहिये ॥७॥ वक्ता को बीच में टोकना नहीं चाहिये, एकता को तोड़ना नहीं चाहिये, विद्या-अभ्यास छोड़ना नहीं चाहिये ॥८॥ क्षण-क्षण में रुठना नहीं चाहिये, झूठा पुरुषार्थ बताना नहीं चाहिये और बिना किये अपना पराक्रम बताना नहीं चाहिये ॥११॥ की हुई प्रतिज्ञा मत भूलो, प्रसंग आने पर अपना सामर्थ्य दिखाने में मत चूको। व्यर्थ बड़ों का तिरस्कार न करो ॥१२॥ शरीर को बहुत सुख देना नहीं चाहिये, प्रयत्न कभी छोड़ना नहीं चाहिये, कष्ट से कभी घबराना नहीं चाहिये ॥१४॥ व्यापकता या सर्वप्रियता मत छोड़ो, पराधीन होकर मत रहो, अपना बोझ दूसरों पर मत डालो ॥१९॥ बिना लिखा-पढ़ी के लेन-देन या व्यवहार न करो, हीन से ऋण मत लो, गवाही बिना राजद्वार (कोर्ट-कचहरी) न जाओ ॥२१॥ मत्सर या ईर्ष्या न करो, अन्याय बिना किसी को पीड़ा न दो, अपने शारीरिक बल के अभिमान में अनीतिपूर्ण आचरण न करो ॥२२॥ धूम्रपान न करो,

मादक द्रव्य का सेवन मत करो, वाचाल से मित्रता न करो ॥२५॥ बेकाम न रहो अर्थात् सदा कुछ काम सतत् करते रहो, नीच बात मत सहो, पिता या बड़ों के घर में भी कष्ट बिना मिला अन्न सेवन न करो ॥२६॥ किसी का घात न करो, झूठी गवाही मत दो, कभी असत्य आचरण न करो ॥ समय आ पड़ने पर धैर्य न छोड़ो, सत्त्वगुण का त्याग न करो और शरण आये बैरी को दंड न दो ॥३१॥ अल्पधन पाकर मतवाले न बन जाओ, हरिभक्ति में लाज न करो, पवित्र जनों के बीच अमर्यादित आचरण न करो ॥३२॥ हरिकथा न छोड़ो, निरूपण न तोड़ो और प्रपंचबल से परमार्थ को न मोड़ो ॥३५॥ निष्ठुरता न धरो, जीवहत्या न करो, बादल उमड़ा देखकर बाहर न जाओ, अर्थात् बुरे समय में न जाओ ॥३७॥ सभा देखकर घबराओ नहीं, समय आ पड़ने पर उत्तर देने से मत चूको, धिक्कारने से अपने धैर्य को डिगने न दो ॥३८॥ बिना गुरु किये रहो नहीं, नीच जाति का गुरु करो नहीं, वैभव में भूलकर जीवन को शाश्वत, अर्थात् नित्य मानो नहीं ॥३९॥ सत्यमार्ग न छोड़ो, असत्य पथ पर न जाओ और असत्य का अभिमान कभी न करो ॥४०॥ अपकीर्ति का त्याग करना चाहिये, सत्कीर्ति बढ़ाना चाहिये और विवेकपूर्वक, दृढ़तापूर्वक सत्य का मार्ग पकड़ना चाहिये ॥४१॥ जो मनुष्य इन उत्तम गुणों को नहीं अपनाते वे कुलक्षणी हैं। उनके लक्षण अगले समास में कहे जाएंगे। ४२॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक २

समास ३

कुविद्या लक्षण

न जाने न जाने न जाने स्वयं को ।
न छोड़े न छोड़े कदा संशयो को ॥
न त्यागे न त्यागे न त्यागे अहंता ।
नहीं आत्म के रूप को प्राप्त होता ॥

- मनोबोध . १४२.

अब कुविद्या के लक्षण सुनें। त्याग करने के लिये ये अतिहीन कुलक्षण बताये गये हैं ॥१॥ काम, क्रोध, मद, मत्सर, लोभ, दंभ, तिरस्कार, गर्व, अहंकार, द्वेष, विषाद, विकल्प, आशा, ममता, तृष्णा, कल्पना, चिंता, अहंता, कामना, भावना, ईर्ष्या, अविद्या, ईष्णा, वासना, अतृप्ति, आसक्ति, इच्छा, वांछा, चिकित्सा, निंदा, अनीति, कृतघ्नता, मस्ती, ज्ञातापन का अभिमान, अवज्ञा, विपत्ति, आपदा, दुर्वृत्ति, दुर्वासना, स्पर्धा, खटपट, बकवाद, ये सब कुविद्या की परम व्यथाएं हैं ॥४-७॥ कुविद्यावान मनुष्य कुरूप और कुलक्षणी, अशक्त और दुर्जन, दरीद्र और कृपण होता है ॥८॥ वह आलसी और पेटू, दुर्बल और क्रोधी और तुच्छ और बदमाश होता है ॥९॥ वह न जानता है न सुनता है, न उसे स्वयं आता है न सीखता है, वह न तो खुद करता है, न अभ्यास-दृष्टि से देखता ही है ॥११॥ कुविद्यावान मनुष्य पापी और निन्दक, कष्टी और घातक तथा दुःखी और हिंसक होता है ॥१३॥ हीन और बनावटी, रोगी और कुकर्मी, कृपण और अधर्म में वासना रखने वाला मनुष्य कुविद्यावान है ॥१४॥ छोटा और बहुत गर्व करने वाला, विषयों में आसक्त और नष्ट, द्वेषपूर्ण और भ्रष्ट है उसे कुविद्यावान समझो ॥१७॥ जो आंतिशय अभिमानी और निर्लज्ज हो, कर्जदार और दुष्ट हो अथवा दंभी और अन्धाधुन्ध हो वह कुविद्यावान है ॥१८॥ जो कटुवचनी और विकारी हो, झूठा और कृतघ्न हो, स्वयं अवलक्षणी होकर अन्यो को धिक्कारता है, वह कुविद्यावान है ॥२०॥ जो कठिन वचन, कर्कश वचन, कष्ट के वचन, सन्देह के वचन, दुःख के वचन और तीव्र

वचन बोलता हो, उसे कुविद्यावान समझो ॥२१॥ जो अतिशय कपटी, कुटिल, मन में गांठ रखने वाला, कुढ़ने वाला, टालमटोल करने वाला, नष्ट, कोपी, कुधन और स्वच्छंद हो, उसे कुविद्यावान समझना चाहिये ॥२३॥ जो आत्म-हत्यारा, स्त्रीहत्यारा, गौ-हत्यारा, ब्राह्मण हत्यारा, माता-पिता की हत्या करने वाला और महापापी या पतित हो, वह कुविद्यावान है ॥२४॥ जो हीन, कुतर्की, कुपात्र हो; मित्रद्रोही और विश्वासघाती हो; कृतघ्न, सौतेली माँ या गुरुस्त्री को भ्रष्ट करने वाला हो; आततायी और बकबक करने वाला हो, वह कुविद्यावान है ॥२६॥ विपरीत भावना रख लड़ाई-छगड़ा करने वाला, अधर्मी, अनाड़ी, शोकसंग्रही, चुगलखोर, व्यसनी और हठी मनुष्य कुविद्यावान है ॥२७॥ दुष्ट, अपयशी, मलीन, दूसरे की भलाई न देख सकने वाला, स्वैर हो, वह कुविद्यावान है ॥२८॥ निःशंक, निर्लज्ज, झगड़ालू, नीच, धट-उद्धत, अर्थात् बड़ा घमंडी, निडर, अक्षरशत्रु, विकारवान भी कुविद्यावान है ॥३३॥ विद्याहीन, वैभवहीन, कुलहीन, लक्ष्मीहीन, शक्तिहीन, सामर्थ्यहीन, भाग्यहीन और भिखारी होना कुविद्या का लक्षण है ॥३४॥ बलहीन, कलाहीन, मुद्राहीन, लक्षणहीन, लावण्यहीन, अंगहीन और कुरूप होना भी कुविद्या का फल है ॥३५॥ युक्तिहीन, बुद्धिहीन, आचारहीन, विचारहीन, क्रियाहीन, सत्त्वहीन, विवेकहीन और संशयी होना भी कुविद्या का लक्षण है ॥३६॥ भक्तिहीन, भावहीन, ज्ञानहीन, वैराग्यहीन, शांतिहीन, क्षमाहीन और क्षुद्र होना कुविद्या का लक्षण है ॥३७॥ जो समय, प्रसंग, प्रयत्न, अभ्यास, विनती, मित्रता आदि कुछ नहीं जानता और अभागा है, वह कुविद्यावान है ॥३८॥ कुल मिलाकर जो मनुष्य नाना विकारों और कुलक्षणों का घर है, उसी को कुविद्यावान समझना चाहिये ॥३९॥ ये कुविद्या के लक्षण जानकर इन्हें त्याग ही देना चाहिये, दुराग्रहपूर्वक इन्हें पकड़े रहना अच्छा नहीं है ॥४०॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक २

समास ४

भक्ति निरूपण

महायत्न से देह को है संभाला ।
बने अंत में काल का ही निवाला ॥
सभी छोड़ दो चिंतना ऐहिकों की ।
करो भक्ति हे चित्त श्रीरामजी की ॥

मनोबोध . २६.

पहले तो यह नरदेह ही नाना प्रकार के सुकृतों का फल है। फिर उसमें भी बड़ा भाग्य हो तभी यह देह सन्मार्ग में लगती है ॥१॥ नरदेह में ब्राह्मण का जन्म श्रेष्ठ है, उसमें भी संध्या, स्नान, अच्छी वासना और परमात्मा का भजन करने का योग तभी आता है जब पूर्वजन्म का पुण्य हो ॥२॥ पहले तो परमात्मा की भक्ति ही उत्तम है और फिर उसमें भी यदि सत्समागम हो गया तो समय सार्थक हो जाता है । यही परमलाभ है ॥३॥ प्रेम और प्रीति का सद्भाव, भक्तों का जमाव, हरि-कथा का महोत्सव आदि बातों से भक्ति बहुत बढ़ जाती है ॥४॥ नरदेह अर्थात् मनुष्य जन्म पाकर जीवन थोड़ा बहुत सार्थक अवश्य करना चाहिये जिससे कि परलोक, जो परम दुर्लभ है, मिल सके ॥५॥ विधिपूर्वक ब्राह्मण के कर्म अथवा दया, दान, धर्म अथवा भगवान का भजन, जो सुलभ है, करना चाहिये ॥६॥ संसार दुःखों से अनुत्पन्न होकर सर्वसंग परित्याग करना चाहिये अथवा भक्तियोग का स्वीकार करना चाहिये, नहीं तो साधुओं का संग करना चाहिये ॥७॥ अनेक शास्त्रों का मंथन, तीर्थटन अथवा पापक्षय के लिये पुरश्चरण करना चाहिये ॥८॥ परोपकार, ज्ञान का विचार और अध्यात्म-निरूपण में सारासार का विवेक करना चाहिये ॥९॥ वेदों की आज्ञा का पालन करना चाहिये, कर्मकांड और उपासना कांड का आचरण करना चाहिये। यह करने से मनुष्य ज्ञान का अधिकारी बनता है ॥१०॥ तन, मन, वचन, पत्र, पुष्प, फल, जल-जिससे बने उसी से परमात्मा को संतुष्ट कर अपना जीवन सार्थक करना चाहिये ॥११॥ जन्म लेने का फल यही है कि यहां आकर कुछ धर्मकर्म करे; यदि कुछ न किया तो यह जीवन व्यर्थ ही

भूमि को भार होकर रह जाएगा ॥१२॥ मनुष्य को उचित है कि वह कुछ आत्महित करे और यथाशक्ति तन-मन-धन ईश्वर के कार्य में लगाये ॥१३॥ जो मनुष्य यह कुछ नहीं करता उसे मृतप्राय समझना चाहिये, उसने जन्म लेकर माता को व्यर्थ ही कष्ट दिया ॥१४॥

जिन मनुष्यों में संध्या, स्नान, भजन, देवता का अर्चन, मंत्र, जप, ध्यान और मानसपूजा नहीं है, भक्ति, प्रेम, निष्ठा और नियम नहीं है, जो देवता, धर्म और अतिथि-अभ्यागत को नहीं मानते; जिनमें सद्बुद्धि और गुण नहीं है; जिन्होंने कभी कथा और अध्यात्म-निरूपण का श्रवण नहीं किया; जिन्होंने भलों की संगति नहीं की; जिनकी चित्तवृत्ति शुद्ध नहीं है; जिन्होंने मिथ्यामद में आकर कैवल्य की प्राप्ति नहीं की; जिनमें नीति, न्याय, पुण्य करने की शक्ति, युक्तायुक्त क्रिया और परलोक का साधन नहीं है; जिनमें विद्या, वैभव और चातुर्य नहीं है; कला और सरस्वती का रम्य विलास नहीं है; जिनमें शांति, क्षमा, दीक्षा, मैत्री, शुभ-अशुभ साधन आदि कुछ नहीं है; जिनमें शुचिता, स्वधर्म, आचार-विचार, इहलोक-परलोक की चिंता नहीं है; जिनमें कर्म, उपासना, ज्ञान, वैराग्य, योग, धैर्य कुछ भी दिखाई नहीं देता; जिनमें उपरति, त्याग, समता, सुलक्षण, आदर और परमेश्वर के प्रति प्रीति नहीं है; जिनके अंतःकरण में परगुण के विषय में संतोष, पर-उपकार में सुख और हरिभक्ति का लेश भी नहीं है - ऐसे पुरुष जीते हुए भी मृतक-समान हैं। पवित्र पुरुषों को चाहिये कि उनसे वार्तालाप भी न करे ॥१५-२६॥

अस्तु; जिसके पास पूर्वजन्म की पुण्य-सामग्री है उसी से भगवद्भक्ति बनती है। और फिर, जो जैसा करते हैं वैसा पाते हैं ॥२७॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक २

समास ५

रजोगुण लक्षण

कहो सौख्य संपन्न क्या पूर्ण कोई ।
विचारो तथा देख तो विश्व भाई ॥
तुम्हारे तुम्हें कर्म जन्मान्तरों के ।
फलों को तुम्हें झेलना है उन्हीं के ॥

- मनोबोध . ११.

यह देह सत्त्व, रज, तम, इन तीन गुणों से युक्त है। इनमें सत्त्वगुण उत्तम है ॥१॥ सत्त्वगुण से मनुष्य भगवान की भक्ति, रजोगुण से पुनरावृत्ति, अर्थात् पुनश्च मनुष्य जन्म और तमोगुण से अधोगति पाते हैं ॥२॥ ये तीनों गुण मनुष्य में निवास करते हैं। इनमें से जब एक गुण की विशेषता होती है तब अन्य दो गुण हीन पड़ जाते हैं ॥५॥ रज, तम और सत्त्व-इन्हीं से जीवन चलता है। अब रजोगुण का कर्तृत्व, अर्थात् कार्य का स्वरूप दिखाता हूँ ॥६॥ रजोगुण शरीर में आने से मनुष्य कैसा आचरण करता है वह चतुर श्रोता सावधान होकर सुनें ॥७॥

जो यह निश्चय करता है कि, घर मेरा है, गृहस्थी मेरी है; ईश्वर कौन चीज है, वह रजोगुणी है ॥८॥ माता, पिता, स्त्री, लड़का, पोता, लड़की, इतने ही लोगों की जो चिंता करता है, वह रजोगुणी है ॥९॥ अच्छा खाना, अच्छा पीना, अच्छा पहनना, अच्छा ओढ़ना और दूसरे के वस्तु की अभिलाषा करना यह रजोगुण का लक्षण है ॥१०॥ दान-धर्म, जप-ध्यान, पाप-पुण्य आदि का जो विचार नहीं करता, वह रजोगुणी है ॥११॥ धन-धान्य और द्रव्य को जोड़ने में ही जिसका मन लगा रहता है और जो अत्यंत कृपण है, वह रजोगुणी है ॥१३॥ जो कहता हो कि मैं तरुण हूँ, मैं सुंदर हूँ, मैं चतुर हूँ और मैं सबसे बड़ा हूँ, वह रजोगुणी है ॥१४॥ जो यह चाहता है कि दूसरे का सब चला जाये और मेरा ही बना रहे, वह रजोगुणी है ॥१६॥ जिसकी देह में कपट, मत्सर, तिरस्कार अथवा काम का विकार उठता हो, वह रजोगुणी है ॥१७॥ अपने बालक पर जिसकी बड़ी ममता हो, जिसे स्त्री बहुत प्यारी हो और जिसका अपने सब लोगों

पर बहुत प्रेम हो, वह रजोगुणी है ॥१९॥ संसार के अनेक संकटों से कैसे निर्वाह होगा इस बात की जिसे बड़ी चिंता लगी रहती है, वह रजोगुणी है ॥२०॥ किसी का वैभव देखकर जिसके मन में लालसा उठती है और जो आशा के कारण दुःखी रहता है, वह रजोगुणी है ॥२२॥ जो कुछ देखता है उसी को पाने की इच्छा करता है और न मिलने पर दुःखी होता है, वह रजोगुणी है ॥२२॥ हंसी-मजाक और विनोद में जिसका मन लगा रहता है, शृंगारिक गीत गाता है तथा राग-रंग में जिसका चित्त लगा रहता है, वह रजोगुणी है ॥२६॥ कलावंत, बहुरूपी और नटों के खेल देखने में जो तत्पर हो तथा नाना प्रकार के खेलों में जो दांव लगाता है, वह रजोगुणी है ॥२७॥ परमात्मा के लिये जिसे लज्जा आती है; परंतु पेट के लिये जो कष्ट सहता है और प्रपंच में जो प्रेम रखता है, वह रजोगुणी है ॥३०॥ परमात्मा को न जानकर जो सारे सांसारिक पदार्थों से प्रेम रखता है और जानबूझकर अपने को जन्ममृत्यु के चक्कर में डालता है, वह रजोगुणी है ॥३३॥

यह रजोगुण मोह के कारण, जन्म-मरण दिलाता है। प्रापंचिक रजोगुण को शबल अर्थात् हीन समझो - यही दारुण दुःख का भोग कराता है ॥३४॥ यह रजोगुण जब तक नहीं छूटता तब तक सांसारिक विषयों से मुक्ति नहीं - प्रपंच में वासना लगी रहती है; अतएव इसका उपाय क्या है? ॥३५॥ इसका उपाय केवल भगवद्भक्ति है। यदि विरक्ति न हो सके तो यथाशक्ति परमात्मा का भजन करना चाहिये ॥३६॥ तन, मन, वचन, पत्र, पुष्प, फल, जल जो कुछ बने - हृदय से ईश्वर को अर्पण कर जीवन सार्थक करना चाहिये ॥३७॥ यथाशक्ति दान-पुण्य करना चाहिये, भगवान में अनन्य भक्ति रखना चाहिये और सुख-दुःख आने पर ईश्वर का ही चिंतन करना चाहिये ॥३८॥ आदि और अंत में एक ईश्वर ही है, यह माया बीच में लगी है, अतएव ईश्वर में ही पूर्ण भाव रखना चाहिये ॥३९॥ ऊपर शबल (अशुद्ध) रजोगुण संक्षेप में बतलाया। अब, जिससे परमार्थ हो सकता है, वह शुद्ध रजोगुण है ॥४०॥ उसके लक्षण सत्त्वगुण में कहे जाएंगे। वह रजोगुण पूर्णतया, भजन का मूल है ॥४१॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक २

समास ६

तमोगुण लक्षण

महामूर्ख को स्थैर्य ना प्राप्त होगा ।
जहां काम हो राम कैसे रहेगा ।।
जहां लोभ हो क्षोभ ही क्षोभ होगा ।
जिसे वासना हो अतिदीन होगा ।।

- मनोबोध .६४.

पिछले समास में क्रियायुक्त रजोगुण के लक्षण बताये; अब तमोगुण का वर्णन सुनो ॥१॥ संसार में दुःख प्राप्त होते ही मन में खेद उठता हो और अतिशय क्रोध आता हो तो वह तमोगुण का लक्षण है ॥२॥ क्रोध आने पर जो माता, पिता, बन्धु, बहन, स्त्री आदि कुछ भी विचार न कर के ताड़ना करे तो इसे तमोगुण का लक्षण समझो ॥३॥ क्रोध से बेहोश होकर दूसरों के प्राण ले ले और स्वयं भी प्राण दे दे तो इसे तमोगुण जानो ॥४॥ क्रोध का संचार होने पर जो पिशाच के समान घूमता हो और अनेक उपायों से भी रूक न पाता हो तो इसे तमोगुण जानो ॥५॥ सदा भ्रान्ति में रहना, किया हुआ निश्चय डिग जाना और बहुत सोना तमोगुण है ॥६॥ किसी का कोई प्रेमी मर गया हो और उसके बाद वह प्राण दे दे या आत्महत्या कर ले, तो यह तमोगुण है ॥७॥ कीड़े-मकौड़े, चींटी और अन्य जीवों का वध करने में प्रीति हो और अत्यंत निर्दयी हो तो यह तमोगुण का लक्षण है ॥८॥ द्रव्य के लिये स्त्री, बालक, ब्राह्मण, गौ आदि की हत्या करता हो तो यह तमोगुण है ॥९॥ अन्तःकरण में कपट रखकर दूसरे का सत्यानाश करे और सदा उन्मत्त के समान आचरण करे, तो यह तमोगुण है ॥१०॥ मत्सर में पड़कर भक्ति तोड़ना, मंदिर गिराना, फले हुए वृक्ष तोड़ना, तमोगुण है ॥११॥ सत्कर्म अच्छे न लगते हों, नाना प्रकार के दोष ही अच्छे लगते हो, चित्त में पाप का भय न हो तो इसे तमोगुण जानो ॥१२॥ आग लगाकर, शस्त्र चलाकर, जहर देकर अथवा अन्य भौतिक उपाय से, मत्सर के कारण, जीवों का क्षय करना

तमोगुण है ॥२०॥ दूसरे के दुःख से संतोष हो, निष्ठुरता अच्छी लगे और प्रपंच से भय न लगे तो यह तमोगुण है ॥२१॥ वैभव पाकर जीवों को कष्ट देता हो और मन में दया न आती हो तो यह तमोगुण का लक्षण है ॥२३॥

जिसे भक्ति, भाव, तीर्थ, देव आदि पर श्रद्धा न हो तथा वेद, शास्त्र आदि किसी की भी आवश्यकता प्रतीत न होती हो, वह तमोगुणी है ॥२४॥ जो स्नान-संध्या आदि नित्य-नियम न करता हो, जो स्वधर्म से भ्रष्ट हो गया हो वह तमोगुणी है ॥२५॥ जो बड़े भाई, पिता, माता की बातें न सहता हो और क्रोध में भरकर घर छोड़कर निकल जाता हो, वह तमोगुणी है ॥२६॥ जिसे मंत्र-तंत्र का अभ्यास, शस्त्रविद्या और कुशती लड़ने का शौक हो उसे तमोगुण-प्रधान जानो ॥२७॥ पीठ में छेद कर आंकड़ा लगाना, दहकते अंगारों के कुंड में चलना, जीह्वा छेदना, इत्यादि पीड़ादायक कार्यों से देवताओं की मनौति करना, यह तमोगुण का लक्षण है ॥२८॥ खप्पर में कंडे जलाकर सिर पर रखना, मशाल से अपना शरीर जलाना, स्वयं को शस्त्र मार लेना आदि ढोंग कर देवताओं को प्रसन्न करना, तमोगुण है ॥२९॥ निराहार व्रत करना, पंचाग्नि तापना, धूम्रपान करना, स्वयं को जमीन में गाड़ लेना, तमोगुण के लक्षण हैं ॥३०॥ अनेक निग्रह कर स्वयं को पीड़ा देना, देह को व्यर्थ ही कष्ट में तड़पाना और क्रोध से देवता फोड़ देना, तमोगुण है ॥३१॥ जो देवता की निंदा करता है, जो आशाबद्ध या अघोरी है अथवा जो संत का संग नहीं करता, वह तमोगुण-प्रधान पुरुष है ॥३२॥

इस तमोगुण का पूरा-पूरा वर्णन करने में बहुत विस्तार हो जाएगा। इस कारण त्याग करने के लिये यहां संक्षेप में निरूपण किया गया है ॥३३॥ यह तमोगुण पतन का कारण, अर्थात् अधोगति देने वाला है, इससे मोक्ष नहीं मिल सकता ॥३४॥ तमोगुण के अनुसार किये कर्मों का फल बड़ा बुरा मिलता है। इससे जन्म-मृत्यु के चक्र का नाश नहीं होता ॥३५॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक २

समास ७

सत्त्वगुण लक्षण

दुखी दीन पर जो सदा है कृपालु ।
कुमार्गी जनों पर सदा है दयालु ॥
नहीं चित्त में क्रोध संताप हानी ।
वही धन्य है राम का दास ज्ञानी ॥

- मनोबोध .५६.

पिछले समास में दारुण दुःखदायक तमोगुण का वर्णन किया; अब परम दुर्लभ सत्त्वगुण का वर्णन सुनिये ॥१॥ यह सत्त्वगुण भजन का आधार है, योगियों का सहारा है और यही दुःखदायक संसार से पार कराता है ॥२॥ इससे उत्तम गति मिलती है, भगवान से मिलने का मार्ग मिलता है और सायुज्यमुक्ति का लाभ होता है ॥३॥ यह परमार्थ का मंडन है, महंतों का भूषण है और इसी के द्वारा रजोगुण और तमोगुण का निरास होता है ॥५॥ सत्त्वगुण से अज्ञान का अंत होता है, पुण्य का प्रकाश होता है और परलोक का मार्ग मिलता है ॥७॥ यह गुण जब किसी मनुष्य में प्रगट होता है तब उसकी क्रिया के लक्षण इस प्रकार होते हैं - ॥८॥

सत्त्वगुण के कारण ईश्वर से प्रेम अधिक रहता है, प्रपंच लौकिक समझ पड़ता है और विवेक सदा पास में रहता है ॥९॥ सत्त्वगुण होने से परमार्थ में प्रीति, भक्ति में प्रेम और परोपकार में मन लगता है ॥१॥ सत्त्वगुणी मनुष्य स्नान, संध्या आदि कर्म करके पुण्यशील बनता है; और अंतर्शुद्ध बनकर शरीर और वस्त्र भी उज्ज्वल रखता है ॥१२॥ वह यज्ञ करता है और कराता है; वेद, शास्त्र आदि पढ़ता है और पढ़ाता है; तथा दान-पुण्य स्वयं करता है और कराता है ॥१३॥ सत्त्वगुणी मनुष्य का अध्यात्म-निरूपण में मन लगता है, उसे हरिकथा अच्छी लगती है और वह सदाचरण में प्रवृत्त होता है। वह अनेक प्रकार के दान, व्रत, उद्यापन आदि करता है परंतु यह सारा वह निष्काम भाव से करता है ॥१४-१८॥ वन-उपवन, पुष्पवाटिका, कुएं, तालाब आदि बनवाये और तपस्वियों के मन को संतुष्ट करे वह सत्त्वगुणी है ॥२१॥ मंदिर बनवाकर उन्हें सुंदर सजाता

है, नाना प्रकार की सामग्री वहां रखता है और स्वयं हरिभजन में तत्पर रहता है वह सत्त्वगुणी है ॥२६॥ जो भांति भांति का पूजा का सुन्दर सामान और मण्डप, चांदनी, आसन आदि देवालय में समर्पित करता है, वह सत्त्वगुणी है ॥२९॥ जो देवस्थान में भक्तिपूर्वक कनिष्ठ कार्य करने में भी संकोच न करता हो - जो स्वयं देवद्वार में झाड़ू लगाता हो, वह सत्त्वगुणी है ॥३०॥ अभिमान छोड़कर निष्काम भाव से भगवान का कीर्तन करता हो; और कीर्तन करते समय भक्ति-प्रेम के कारण जिसके स्वेद और रोमांच उठ आते हों, वह सत्त्वगुणी है ॥३८॥ हृदय में ईश्वर का ध्यान करने से जिसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते हों और देहभाव न रहता हो, वह सत्त्वगुणी है ॥३९॥ जिसका देहाभिमान छूट गया हो, विषयों से प्रबल वैराग्य हो गया हो और जिसे माया मिथ्या जान पड़ती हो, वह सत्त्वगुणी है ॥४२॥ जो अपने आश्रम में रहते हुए अति आदर से नित्य नियम करता हो और सदा राम में प्रीति रखता हो, वह सत्त्वगुणी है ॥४५॥ जिसके अंतःकरण में "मैं कौन हूँ" - यह स्फूर्ति उठती हो और जो अपने सत्स्वरूप का चिंतन करता हो तथा बुरे संदेहों का निवारण करता हो, वह सत्त्वगुणी है ॥५०॥ जिसमें शान्ति, क्षमा, दया और निश्चय उपजे; जान लो कि उसके अंतःकरण में सत्त्वगुण आ गया ॥५२॥ अतिथि-अभ्यागत आ जाने पर उसे भूखा नहीं जाने देता और यथाशक्ति दान देता है, वह सत्त्वगुणी है ॥५३॥ श्रवण, मनन और निदिध्यास से जिसे समाधान हुआ हो और शुद्ध आत्मज्ञान का लाभ हुआ हो, वह सत्त्वगुणी है ॥६॥ जो सब लोगों का मित्र हो, किसी से विरोध न रखता हो; जिसने परोपकार के लिये जीवन अर्पित कर दिया हो, वह सत्त्वगुणी है ॥६४॥ नीच वचन सहना, उनका उत्तर न देना और आये क्रोध को संभालना यह सत्त्वगुण का लक्षण है ॥६७॥ उत्तम कर्मों का आचरण, बुरे कर्मों का त्याग और भक्ति मार्ग पर आगे बढ़ना यह सत्त्वगुण का लक्षण है ॥७१॥ संत का दर्शन कर जिसे परमसुख मिलता है और जो उसे आगे बढ़कर सर्वभाव से नमस्कार करता है, वह सत्त्वगुणी है ॥७७॥ सारांश, निष्काम भाव से परमात्मा का भजन और धर्मकार्य करना सत्त्वगुण का मुख्य लक्षण है ॥८५॥ सत्त्वगुण ही संसार सागर से पार कराने वाला है और इसी से ज्ञानमार्ग का विवेक जन्म लेता है ॥८६॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक २

समास ८

सद्विद्या लक्षण

कभी दुःख की भावना को न लाओ।
उसी मार्ग से शोक चिंता भगाओ ॥
विचारो जरा देह आसक्ति त्यागो।
विदेही बनो मुक्ति को नित्य भोगो ॥

- मनोबोध . १२.

अब सद्विद्या के लक्षण सुनें। ये लक्षण परम शुद्ध हैं। इनका विचार करने से मनुष्य आप ही आप सद्विद्यावान बन जाता है ॥१॥ सद्विद्यावान पुरुष में उत्तम लक्षण विशेष होते हैं। ऐसे पुरुष के गुण सुनकर परम संतोष होता है ॥२॥ सद्विद्यावान पुरुष भाविक, सात्त्विक, प्रेमी, शांतिशील, क्षमाशील, दयाशील, शालीन, सत्कर्मों में तत्पर और अमृतवचनी होता है ॥३॥ वह परम सुंदर और चतुर, बहुत बलवान और धीर, परम धनवान और उदार होता है ॥४॥ वह परम ज्ञाता और भक्त, महापंडित और विरक्त, महातपस्वी और शांत होता है ॥५॥ वह उत्तम वक्ता और निष्काम, सर्वज्ञ और आदरपूर्वक सद्ग्रंथों का श्रवण करने वाला, श्रेष्ठ और विनम्र होता है ॥६॥ वह राजा होकर धार्मिक, वीर होते हुए विवेकी और युवा होते हुए नियम से चलने वाला होता है ॥७॥ वह सतत् कर्म करते हुए निरभिमानी, गायक और विष्णुभक्त तथा वैभवशाली होते हुए भगवद्भजन का बहुत आदर करने वाला होता है ॥९॥ वह तत्त्ववेत्ता होकर भी उदासीन; बहुश्रुत होते हुए भी सज्जन; मंत्री होकर भी गुणवान और नीतिवान होता है ॥१०॥ सद्विद्या वाले पुरुष साधु, पवित्र और पुण्यवान होते हैं, अंतर्शुद्ध धर्मात्मा और कृपालु होते हैं- वे कर्म में निष्ठा रखने वाले, स्वधर्माचरण में निर्मल और निर्लोभ होते हैं, तथा भूल से यदि कोई अनिष्ट कार्य उनके हाथ से हो जाये तो उसका पश्चाताप करते रहते हैं ॥११॥ सद्विद्यावान पुरुष दक्ष, धूर्त, अर्थात् सभ्य, योग्य, तार्किक, सत्यवान, साहित्यवान, नियम करने वाले, भेद जानने वाले, कुशल, चपल,

चमत्कारिक होते हैं ॥१३॥ जो आदर, सम्मान, तारतम्य, अर्थात् मर्यादा या परम्परा, प्रयोग, समय, प्रसंग और कार्यकारण के चिह्न जानता है और विचक्षण बोलने वाला है, वह सद्विद्यावान है ॥१४॥ जो चतुर, व्यवस्थित, गुणग्राही, अपेक्षा न रखने वाला और मनुष्यों का संग्रह करने वाला है तथा जो प्राणीमात्र से मित्रता करने वाला है वह सद्विद्यावान है ॥१९॥ जो मित्रता के साथ दूसरे का हित करता है, मधुर वचन कहकर दूसरे का शोक हरता है, जो सामर्थ्य के साथ रक्षा करता है और पुरुषार्थ के साथ जगत का मित्र है वह सद्विद्यावान है ॥२१॥ जो विवाद न करते हुए संवाद करता है, जो संगरहित, निरुपाधि है, जो दुराशारहित, अक्रोध, निर्दोष और मत्सर न करने वाला है, वह सद्विद्यावान है ॥२३॥ विमल ज्ञानी, निश्चयात्मक, समाधान करने वाला, भजन करने वाला और सिद्ध होकर भी साधक तथा साधन की रक्षा करता है, वह सद्विद्यावान है ॥२४॥ जो सुखरूप, संतोषरूप, आनंदरूप, हास्यरूप, ऐक्यरूप है तथा जो सब को आत्मरूप समझता है, वह सद्विद्यावान है ॥२५॥ जो यशवान, कीर्तिवान्, शक्तिवान्, सामर्थ्यवान्, वीर्यवान्, वर पाया हुआ, सत्यवान् और सुकृति हो वह सुविद्या का धनी है ॥२७॥ जो मनुष्य युक्तिवान्, गुणवान्, श्रेष्ठ, बुद्धिवान्, बहुत धैर्यवान्, दीक्षावान्, सदा संतुष्ट, निस्पृह और वीतरागी हो वह सद्विद्यावाला पुरुष है ॥२९॥

अस्तु। ऐसे अनेकानेक गुण होना सद्विद्या का लक्षण है। इन गुणों का अभ्यास करना चाहिये; इसीलिये ये यहां कहे गये हैं ॥३०॥ रूप और सुन्दरता का अभ्यास नहीं किया जा सकता - उन पर हमारा कोई उपाय नहीं चलता कारण वे प्रकृति से प्रदत्त गुण हैं। परंतु आगन्तुक अर्थात् प्रयत्नपूर्वक विकसित किये जा सकने वाले, इन सद्गुणों का स्वयं में विकास करने के लिये अवश्य कुछ न कुछ प्रयत्न करते रहना चाहिये ॥३१॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक २

समास ९

विरक्त लक्षण

पुनः बोलता हूं नहीं ऊब जाना ।
अभी आज ही राम को शीघ्र पाना ॥
सुखों को तजो तो तुम्हें सौख्य होगा ।
सभी हैं विनाशी न कोई बचेगा ॥

- मनोबोध . २५.

अब विरक्तों के लक्षण सुनो। विरक्तों में ऐसे कौन से गुण हों जिनसे उनमें योगियों का भी सामर्थ्य आ जाए, उनकी सत्कीर्ति बढ़े, महिमा बढ़े? ॥१, २॥ ऐसे कौन से गुण विरक्तों में हों जिनसे परमार्थ सिद्ध हो, आनंद की लहरें हिलोरें लें, विवेकयुक्त वैराग्य की वृद्धि हो, सुख की बाढ़ आ जाए, सद्बिद्या प्रसन्न हो, मोक्षसहित भाग्यलक्ष्मी प्रबल हो, सारे मनोरथ पूर्ण हों, सकल कामनाएं पूर्ण हों, मधुर वचन बोलने के लिये सरस्वती मुख में निवास करे? ॥३-५॥ वे गुण सुनें और हृदय में धारण करें। फिर आप भूमंडल में विख्यात होंगे ॥६॥ विरक्त विवेकी हो, वह अध्यात्मविद्या का प्रचार करे और इंद्रियदमन करने में धैर्य धारण करे ॥७॥ विरक्त पुरुष को भक्ति बढ़ाना चाहिये, शांति रखना चाहिये और अपनी विरक्ति से यत्न करना चाहिये ॥९॥ विरक्त को धर्मस्थापना करनी चाहिये, नीति का अवलम्बन करना चाहिये, अति आदरपूर्वक क्षमा संभालनी चाहिये ॥११॥ विरक्त को परमार्थ प्रकाशित करना चाहिये, उसे विचार का शोध करना चाहिये तथा सन्मार्ग अपनाकर सत्त्वगुणों का विकास करना चाहिये ॥१३॥ विरक्त को अभ्यास करना चाहिये, उद्योग करना चाहिये; और वृत्तत्व द्वारा टूटा हुआ परमार्थ फिर से खड़ा करना चाहिये ॥१५॥ विरक्त को अनेकानेक पर्वतिथियों का उत्सव मनाना चाहिये, भक्तों के मेले आयोजित करने चाहिये और बाधाओं की चिंता किये बिना, उत्साहपूर्वक, उपासना-मार्ग का प्रचार करना चाहिये ॥१७॥ हरिकीर्तन करना चाहिये, अध्यात्म-निरूपण का प्रचार करना चाहिये और निंदा करने

वाले दुष्टों को भक्ति मार्ग से लगाना चाहिये ॥१८॥ बहुतों का उपकार करना चाहिये, भलेपन का जीर्णोद्धार करना चाहिये और प्रयत्नपूर्वक पुण्यमार्ग का विस्तार करना चाहिये ॥१९॥

विरक्त को दृढ़ निश्चय धारण करना चाहिये, संसार को सुखपूर्ण बनाना चाहिये और अपने सत्संग से लोगों का उद्धार करना चाहिये ॥२१॥ विरक्त को सावधान रहना चाहिये, शुद्ध मार्ग से जाना चाहिये और अपने जीवन को परोपकार में खर्च कर कीर्तिरूप से जीवित रहना चाहिये ॥२३॥ विरक्त को चाहिये कि वह अन्य विरक्तों का पता लगावे, साधुओं को पहचाने और संत, योगी तथा सज्जनों को अपना मित्र बनाये ॥२४॥ विरक्त को सांसारिक सत्कर्मों में शामिल होना चाहिये; परंतु उदास वृत्ति नहीं छोड़नी चाहिये ॥२६॥ विरक्त को चाहिये कि वह अन्तर्निष्ठ रहे, क्रियाभ्रष्ट न हो और पराधीन होकर हीन अवस्था को प्राप्त न हो ॥२७॥ विरक्त को समय जानना चाहिये, प्रसंग परखना चाहिये और उसे सब प्रकार से चतुर बनना चाहिये ॥२८॥ विरक्त एकदेशी (परिमित ज्ञानवाला) न रहे, वह अनेकानेक विषयों का गहराई से अध्ययन कर उनका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे ॥२९॥ विरक्त को विरक्त रहना चाहिये, हरिभक्ति करनी चाहिये और अलिप्त रहकर, नित्यमुक्त बनना चाहिये ॥३५॥ विरक्त को चाहिये कि वह शुद्ध मार्ग बतलाये, संशय मिटाये और मनुष्यमात्र को अपना बना ले ॥३७॥ विरक्त निंदा करने वालों की वंदना करे, साधकों का प्रबोध करे और बद्ध जनों को मोक्ष-ज्ञान बतलाकर जागृत करे ॥३८॥ विरक्त को चाहिये कि वह उत्तम गुणों का अंगीकार करे, अवगुणों का त्याग करे और विवेक-बल से नाना प्रकार के अपाय या विघ्न दूर करे ॥३९॥

इन उत्तम लक्षणों को एकाग्र मन से सुनना चाहिये, इनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये ॥ ये लक्षण सहज ही बतला दिये हैं। इनमें से जितने हो सकें, ग्रहण करना चाहिये ॥४०-४१॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक २

समास १०

पढ़तमूर्ख (पठितमूर्ख) लक्षण

अरे भक्ति से शून्य जीना भी क्या है?

महामूर्ख को दुःख ही भावता है ॥

स्मरो राम को चित्त प्रेमादिकों से ।

न हो वासना तुच्छ हेमादिकों से ॥

- मनोबोध . ६५.

पिछले समास में वे लक्षण बताये गये जिनको ग्रहण करने से मूर्खों में भी चतुरता आती है। अब, उनके लक्षण सुनो जो चतुर कहलाते हुए भी मूर्ख हैं ॥१॥ ऐसे लोगों को पढ़तमूर्ख (पठितमूर्ख) कहते हैं। उनके लक्षण सुनकर श्रोतागण दुःख न मानें; कारण अवगुण छोड़ने से सुख मिलता है ॥२॥ जो बहुश्रुत और बुद्धिमान् होकर स्पष्ट ब्रह्मज्ञान बतलाता है और फिर भी दुराशा और अभिमान रखता है, वह पढ़तमूर्ख है ॥३॥ मुक्तावस्था की क्रिया का प्रतिपादन करते हुए जो सगुण भक्ति को मिटाना चाहता है और स्वधर्म तथा साधनों की निंदा करता है, वह पढ़तमूर्ख है ॥४॥ अपने ज्ञातापन से जो सब को दोष लगाता है और सब में छिद्र ढूँढता है, वह पढ़तमूर्ख है ॥५॥ जो रजोगुणी हो, तमोगुणी हो, कपटी और अंतःकरण से कुटील हो, तथा जो वैभव देखकर उसका बखान करता हो, वह पढ़तमूर्ख है ॥६॥ संपूर्ण ग्रन्थ देखे बिना जो व्यर्थ के दूषण लगाता है और गुणों को भी जो अवगुण की दृष्टि से देखता है वह पढ़तमूर्ख है ॥७॥ जो ज्ञातापन के अभिमान का हठ करता है, अपना क्रोध रोक नहीं सकता और जिसके कहने और करने में अंतर है, वह पढ़तमूर्ख है ॥८॥ बिना अधिकार के, वक्ता बनकर जो वक्तृत्व का श्रम करता है, वह पढ़तमूर्ख है ॥९॥ दूसरों को दोष लगाता हो, परंतु जिसे यह नहीं मालुम कि वही दोष स्वयं उसमें है, वह पढ़तमूर्ख है ॥१०॥ अभ्यास करके सब विद्याएं तो जान ली हैं; परंतु लोगों को संतुष्ट करना नहीं जानता वह पढ़तमूर्ख है ॥११॥ जिस प्रकार हाथी स्पर्श-सुख के कारण जाल में फंसता है और पुष्परस के लोभ में भौरा जैसे कांटों में फंस कर मरता है, उसी प्रकार

जो जानबूझ कर प्रपंच में फंसा हुआ है, वह पढ़तमूर्ख है ॥१२॥ भगवान को छोड़कर जो मनुष्य की स्तुति करता है या जिसको देखता है उसी की कीर्ति वर्णन करने लगता है, वह पढ़तमूर्ख है ॥१३॥ वैभव के अभिमान में आकर जीवमात्र को तुच्छ गिनता है और पाखंड-मत का प्रतिपादन करता है, वह पढ़तमूर्ख है ॥१४॥ किसी की बात को सुनकर जो मन में उसके दोष की ही चर्चा करता है और दूसरे की भलाई देखकर मत्सर करता है, वह पढ़तमूर्ख है ॥१५॥ जो भक्ति का साधन भजन नहीं करता, न जिसमें वैराग्य ही है; तथा जो क्रिया बिना ब्रह्मज्ञान बतलाता है, वह पढ़तमूर्ख है ॥१६॥ जो तीर्थ और क्षेत्र को नहीं मानता; न वेद मानता है न शास्त्र मानता है; और जो पवित्र कुल में जन्म लेकर भी अपवित्र रहता है वह पढ़तमूर्ख है ॥१७॥ प्रपंच-विषयों में जो तत्पर है और परमार्थ में जिसकी भक्ति नहीं; अर्थात् जानबूझ कर जो अंधकार में गिरता है, वह पढ़तमूर्ख है ॥१८॥ रात-दिन श्रेष्ठ ग्रन्थों का श्रवण करता है; परंतु अपने अवगुण नहीं छोड़ता और जो स्वयं अपना हित नहीं जानता वह पढ़तमूर्ख है ॥१९॥ वैभव के अहंकार में आकर जो सद्गुरु की उपेक्षा करता है और गुरु-परम्परा को छिपाता है, वह पढ़तमूर्ख है ॥२०॥ ज्ञानोपदेश करके जो अपना स्वार्थ निकालता है, कृपण के समान अर्थ-संचय करता है और जो द्रव्य के लिये परमार्थ का उपयोग करता है, वह पढ़तमूर्ख है ॥२१॥ जिसके हाथ का प्रपंच (गृहस्थी) चला गया है, जिसमें परमार्थ का लेश भी नहीं है और जो देवों और ब्राह्मणों का द्वेषी बन बैठा है, वह पढ़तमूर्ख है ॥२२॥

अवगुणों का त्याग करने के लिये ये पढ़तमूर्ख के लक्षण बताये गये हैं। बुद्धिमान् श्रोता न्यूनाधिक के लिये क्षमा करें ॥ परंतु परममूर्खों में भी मूर्ख वे हैं जो संसार में सुख मानते हैं; कारण इस संसार-दुःख के समान और कोई दुःख नहीं है ॥२३॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ३

समास १

जन्मदुःख निरूपण

नौ मास माँ के उदर में रहोगे ।
बड़े दुःख से ऊष्णता में पचोगे ।
वहाँ से चले आये ओंधे गिरोगे ।
अहा जन्म से क्रंदनों को करोगे ।

- मनोबोध . २०.

तीसरे दशक का प्रथम समास दन्मदुःख निरूपण का है। इस समास में समर्थ ने इस संसार में जन्म लेना ही कैसा दुःखदायक है, इसका वर्णन किया है। समर्थ कहते हैं -

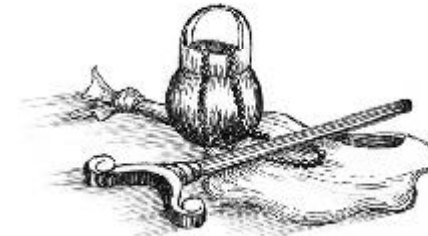
जन्म दुःख का अंकुर है, जन्म शोक सागर है; और जन्म भय का अचल पर्वत है ॥१॥ जन्म कर्म की घड़ियां हैं, जन्म पाप की खान है और जन्म ही काल का नित नया दुःख है ॥२॥ जन्म कुविद्या का फल है, जन्म मोह का कमल है और जन्म ही ज्ञानहीन भ्रान्ति का पड़दा है ॥३॥ जन्म जीव का बंधन है, जन्म मृत्यु का कारण है और जन्म ही व्यर्थ के लिये फंसाता है ॥४॥ जन्म सुख का विस्मरण है, जन्म चिंता का आगर है और जन्म ही वासना का विकार है ॥५॥ जन्म जीव की कुदशा है, जन्म कल्पना का चिह्न है और जन्म ही ममता रूप डाकिनी का फेरा है ॥६॥ जन्म माया का फंदा है, जन्म क्रोध की वीरता है और जन्म ही मोक्ष के बीच में विघ्नरूप है ॥७॥ जन्म जीव का “मैं पन” है, जन्म अहंता का गुण है और जन्म ही ईश्वर का विस्मरणरूप है ॥८॥ जन्म ही विषय की प्रीति है, जन्म ही दुराशा की बेड़ी है और जन्म ही काल की ककड़ी है, जिसे वह खा रहा है ॥९॥ जन्म ही विषम काल है; जन्म ही एक विकट समय है; और जन्म ही अति दुःखद नर्कपतन है ॥१०॥

ओवी क्रमांक ११ से ५३ तक समर्थ ने मनुष्य का शरीर कितना घृणास्पद है, इसका अतिशय विभत्स शब्दों में वर्णन किया है। अमंगल का पुतला, नर्क की गठरी,

चर्मकुंड का ढक्कन, नर्क का भंडार, दुर्गंध का गट्टर इन शब्दों में वे देह का वर्णन करते हैं। मांस, मज्जा, चमड़ी, रक्त, हड्डी इत्यादि अपवित्र मानी जाने वाली वस्तुओं से बना हुआ यह शरीर है। इस शरीर के कारण अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं। मनुष्य का पेट ऐसा विचित्र है कि उसमें गंगाजल डालने पर भी उसका रूपांतरण मूत्र में हो जाता है और मिष्ठान्न खाने पर भी उसकी विष्ठा बन जाती है। जन्म लेने के पूर्व गर्भाशय में मनुष्य के कैसे हाल होते हैं, इसका अतिशय विदारक चित्र इन ओवियों में देखने को मिलता है। कई बार तो वह जीव पेट में ही मर जाता है। जन्म पाते ही रुदन करना, यह गर्भाशय में सहन किये कष्टों का ही प्रगटीकरण है। इस रोने की आवाज को समर्थ “कोऽहम्” कहते हैं। गर्भ में वह माता के आश्रय में जी रहा था, इस कारण “सोऽहम्” भाव में था। इस कारण उसे दुःख का अनुभव नहीं होता। जन्म को प्राप्त होते ही उसकी दुःख की कहानी का प्रारंभ हो जाता है। ऐसे इस पुनर्जन्म को टालने का क्या उपाय है? एक ही उपाय है - इस अशाश्वत शरीर से आसक्ति हटाकर परमेश्वर की शरण में जाना। समर्थ कहते हैं -

गर्भवास में प्राणिमात्र को ऐसा ही दुःख होता है। इसीलिये कहते हैं कि ईश्वर की शरण जाओ ॥५१॥ जो भगवान् का भक्त है वह जन्म से मुक्त है - ऐसा पुरुष ज्ञानबल से सदा विरक्त रहता है ॥५२॥ अस्तु। ये गर्भवास की विपत्तियां मैंने यथामति वर्णन कीं। अब श्रोतागण सावधान होकर आगे की कथा सुनें ॥५३॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक ३

समास २-५

स्वगुण-परीक्षा

यहां वस्तुएं दृश्य लाखों लखाती ।
अकस्मात् वे काल के पेट जाती ॥
सभी नष्ट होगा न कोई बचेगा ।
जरा सोच लो, क्या बिना नाश होगा ? ॥

- मनोबोध . १४६.

तीसरे दशक में “स्वगुण-परीक्षा” शीर्षक से कहे गये दूसरे से पांचवें तक के चार समास यानी एक कहानी अथवा उपन्यास है। विवेक और विचार का अधिष्ठान न होने के कारण और केवल इन्द्रिय स्तर पर जीवन जीने के कारण एक भोगवादी परिवार की कैसी दुर्दशा हुई इसका अतिशय विदारक चित्र समर्थ ने यहां हमारे सम्मुख रखा है। तत्कालीन समाज के एक सर्वसामान्य परिवार का उदाहरण लेकर समर्थ ने यह कहानी प्रस्तुत की है। समर्थकालीन पारिवारिक और सामाजिक जीवन, धार्मिक और सामाजिक मान्यताएं, राजनीतिक परिस्थिति और हमारे आज के जीवन में बाह्यतः काफी अंतर दिखाई दे सकता है, परंतु सांसारिक जीवन जीते हुए सर्वसाधारण मनुष्य सुखप्राप्ति के लिये जो सतत् उठापटक करता रहता है, उसका स्वरूप आज भी वही है, जो समर्थ के काल में था। अधिक विस्तार में गये बिना आप हम जैसे ही घर-परिवार में उलझे एक सांसारिक मनुष्य की यह कथा सारांशरूप में अब हम देखेंगे।

पिछले समास में समर्थ ने जन्म लेने वाले बालक को माता के गर्भ में कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं, इसका वर्णन किया। दूसरे समास के प्रारंभ में ही वे बचपन के दुखों का वर्णन करते हैं।

छोटा बालक व्यथित होकर रोता है। माता अनेक प्रकार से उसे शांत करने का प्रयत्न करती है। बच्चा बोल नहीं पाता इस कारण अपने को निश्चित क्या कष्ट हो रहा है यह समझ नहीं सकता। माता की भी अपनी मर्यादाएं होती हैं। बच्चा क्यों रो रहा है यह वह समझ नहीं पाती। ऐसी स्थिति में बालक माता के बिना क्षणभर भी रह नहीं पाता।

माँ क्षणभर भी दृष्टि से दूर हो जाये तो वह क्रंदन करने लगता है। उस आयु में एक माँ के अलावा दूसरा कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं लगता। माता कुरूप हो, हीनलक्षणी हो अथवा अभागन हो, बच्चे के लिये पूरे संसार में उसके समान कोई नहीं होता। इस प्रकार बालक पूर्ण रूप से माता से ही जुड़ा होता है। ऐसी अवस्था में ही कई बार माता का अचानक देहावसान हो जाता है। सौभाग्य से माता जीवित रहती है और बालक धीरे-धीरे बड़ा होने लगता है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है, माता के प्रति आकर्षण कम होता जाता है। उसे दो चार मित्र मिल जाते हैं, वह उनके साथ खेलकूद में रम जाता है। इसी खेलकूद के दौरान चोट लगकर दांत टूटना, पैर टूटना, पेटदर्द, माता निकलना इस प्रकार के अनेक कष्ट भी सहन करता जाता है।

खैर, बालक बड़ा होता जाता है, उसका विवाह हो जाता है। विवाह के पश्चात् माता-पिता की अपेक्षा अपने सास-ससुर उसे अधिक प्रिय लगने लगते हैं। विवाह होते ही युवा पत्नी के मोहजाल में फंस जाता है, धीरे-धीरे पूर्ण रूप से उसके अधीन होकर रह जाता है। स्त्री के मोह में अपना परमार्थ खो देता है, स्वयं के कल्याण से चूक जाता है, विषयवासना में इतना डूब जाता है कि ईश्वर की दिशा में जाने में उसे लज्जा आने लगती है।

समर्थ आगे कहते हैं, जिस स्त्री के लिये इतनी गुलामी स्वीकार कर ली, उसका अचानक निधन हो गया। परिणामतः अत्यंत शोक होकर वह छाती पीटने लगता है। उसे स्मशानवैराग्य प्राप्त हो जाता है। अब मैं दुबारा संसार नहीं करूंगा, इस प्रकार कहता है, परंतु कुछ ही दिन बाद दूसरी शादी कर लेता है।

अब यह अभागा जीव अपने नये संसार में रम जाता है। प्रपंच के लिये धन कमाने लगता है। युवावस्था, कम आयु की पत्नी और पैसे की मस्ती इन सबमें खोकर वह साधुसंतों की निंदा करने में भी पीछे नहीं हटता। अपने कठोर वचनों से घर के बड़े लोगों के अंतःकरण को ठेस पहुंचाता है। कंजूसी के कारण दान धर्म के लिये एक पैसा भी खर्च नहीं करता। कभी किसी गलत राह पर पैर पड़कर व्यसनी हो जाता है, व्याधिग्रस्त हो जाता है। बीमारी के दिनों में ईश्वर की याद आती है, बीमारी ठीक होते ही फिर घर परिवार में उलझकर उसे भूल जाता है।

अब संतानप्राप्ति की कामना जगती है। प्रतिवर्ष घर में एक संतान बढ़ने लगती है। परिवार नियोजन का ध्यान रखता नहीं। घर में अनेक लड़के-लड़कियों का जन्म होता जाता है और इस कारण लक्ष्मी रूठकर चली जाती है। खाने के लाले पड़ जाते हैं, दरिद्रता का ताप सबको झुलसाने लगता है।

दिन ब दिन खर्च बढ़ता जाता है। आवक कम हो जाती है। कन्याएं विवाह योग्य हो जाती हैं, परंतु उनके विवाह के लिये धन कहां से आए? किसी प्रकार घर का कीमती सामान, जानवर बेच कर, कुछ कर्ज लेकर लड़कियों का विवाह धूमधाम से करता है। समाज में झूठी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। परंतु अब कर्ज की रकम बढ़ती जाती है, ऋण देने वाले पीछे पड़ जाते हैं, तब परदेस जाकर धन कमाने का निश्चय करता है। परदेस जाता है, बहुत कष्ट कर धन कमाता है, अपने से हीन लोगों की सेवा करता है और दो वर्ष पश्चात् अपनी पत्नी, बच्चों से मिलने घर लौटता है।

पिता ने साथ लाये मिठाई, नये कपड़े देखकर बच्चे बड़े खुश होते हैं। चार दिन परिवार के साथ आनंद में बीतते हैं और पत्नी उसे फिर धन कमाने के लिये जाने को कहती है। भरे गले से फिर अर्थाजर्ज के लिये निकल पड़ता है। तब उसे अपनी माता, उसके निरपेक्ष प्रेम की याद आती है। माता-पिता के प्रति पूर्व में किये अपने कठोर व्यवहार पर अब उसे पश्चाताप होता है।

कुछ वर्ष परदेस में धन कमाकर वापस आने पर देखता है कि गांव में अकाल पड़ा हुआ है, पत्नी और कुछ बच्चों की मृत्यु हो चुकी है। घर संभालने वाला कोई चाहिये इसलिए तीसरी शादी कर लेता है। वह स्वयं बढ़ती आयु के कारण थक चुका होता है, पत्नी युवा होती है। उसमें और उसके जवान सौतेले लड़कों में झगड़ा होता है। यह कामाधीन होकर पत्नी का पक्ष लेता है। झगड़ा बढ़ता जाता है। युवा लड़के पिता पर हाथ उठा देते हैं, समाज में बड़ी बदनामी होती है। किसी प्रकार गांव के लोग बीच बचाव करते हैं, घर का बंटवारा होता है और यह अपनी युवा पत्नी के साथ अलग झोपड़ी बनाकर रहने लगता है। उसी समय विदेशी सेना का आक्रमण होता है, लूटपाट होती है और यवन इसकी युवा स्त्री को उठाकर ले जाते हैं, उसे भ्रष्ट कर देते हैं। युवा गुणी पत्नी को आक्रामक उठाकर ले गये, अब किसी का आधार रहा नहीं, वृद्धावस्था प्राप्त हो गयी। अब जाकर भगवान की याद आयी, पश्चाताप होने लगा।

शरीर अनेक व्याधियों से घिर गया। जिंदगीभर किया स्वार्थ व्यर्थ ही चला गया। पश्चाताप में रोता हुआ मन और अतृप्त वासनाएं। इसी अवस्था में मृत्यु हो जाती है। उन वासनाओं की पूर्ति के लिये दुबारा जन्म। कहानी वहीं पहुंच जाती है, जहां से प्रारंभ हुई थी। “पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम् ।” जन्म-मरण का यह चक्र यूं ही चलता रहता है। यह कोई काल्पनिक कहानी नहीं है। संपूर्ण मानव जाति की यही कहानी है। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार कहानी का बाह्यरूप भले ही बदल जाता है, परंतु उसका सारतत्त्व हम सबके लिये समान है। एक धागा सुख का और सौ धागे दुःख के, इस प्रकार बुना गया यह जीवन का वस्त्र है। इस कहानी के निमित्त से श्रीसमर्थ हमारा ध्यान इसी ओर आकर्षित करते हैं।

त्रिताप अर्थात् तापत्रय - तीसरे दशक के समास ६, ७ और ८ में श्रीसमर्थ ने क्रमशः आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ऐसे तीन प्रकार के ताप अर्थात् दुःखों का वर्णन किया है। जीवन में प्रत्येक को इन्हें भोगना ही पड़ता है।

देह, इंद्रियां और प्राण इनके कारण जो दुःख प्राप्त होते हैं, वे आध्यात्मिक ताप कहलाते हैं। उदाहरणार्थ- शरीर में समय समय पर उत्पन्न होने वाले रोग तथा मानसिक दुःख इत्यादि।

समस्त भूतों के संयोग से उत्पन्न होने वाले दुःख आधिभौतिक ताप कहलाते हैं। जैसे सांप ने काटना, ठोकर लगाना, अपघात होना, भूस्खलन में फंस जाना, परिवार के अन्य लोगों पर विपदा आना, इत्यादि।

अंत में मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्म के अनुसार मृत्यु के पश्चात् जो भोग भोगने पड़ते हैं उनको आधिदैविक ताप कहा जाता है।

तीसरे दशक के इन आठ समासों में इस प्रकार जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक के दुःखमय मानव जीवन की चर्चा की गयी। परंतु मानव जीवन की अंतिम परिणति होती है मृत्यु में। वही प्राणिमात्र की अंतिम गति है। अगले समास में उसी का निरूपण किया गया है।

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ३

समास ९

मृत्यु निरूपण

स्मरो लोक का नाम ही मृत्युभू है ।
वृथा है पिपासा अहंता वृथा है ॥
चिरंजीव हूं मैं भरा दर्प जीना ।
अकस्मात् सर्वस्व को छोड़ देना ॥

-मनोबोध . १५.

यह संसार एक ऐसा सवार है जो मृत्यु की ओर जा रहा है। काल राह देखता है कि किस घड़ी में इस शरीर को उठा ले जाऊं ॥१॥ संचित कर्मों का शेष पूरा होने पर, फिर यहां एक क्षण भी मांगे नहीं मिलता- पल भर भी जाने नहीं पाता कि कूच करना पड़ता है ॥३॥ अचानक काल के हरकारे छूटते हैं और मृत्युपथ पर बलपूर्वक ले जाते हैं ॥४॥ मृत्यु की मार होने पर कोई सहारा नहीं दे सकता, आगे पीछे सबकी कूटाकूटी होती ही है ॥६॥ मृत्युकाल एक ऐसी लाठी है जो बलवान की भी खोपड़ी पर बैठती है। बड़े बड़े बलवान और राजा-महाराजा भी इसकी मार से बच नहीं सकते ॥७॥

मृत्यु नहीं जानती कि यह क्रूर है, मृत्यु नहीं जानती कि यह पहलवान है या समरांगण में संग्राम करने वाला वीर है ॥८॥ मृत्यु नहीं जानती कि यह बलाढ्य है, या धनवान है। सर्वगुण-संपन्न पुरुष को भी मृत्यु कुछ नहीं समझती ॥९॥ विख्यात पुरुष, श्रीमंत, महापराक्रमी पुरुष को भी मृत्यु कुछ नहीं समझती ॥१०॥ सामान्य राजा हो या चक्रवर्ती सम्राट या फिर कोई करामात दिखाने वाला, मृत्यु किसी को कुछ नहीं समझती ॥११॥ अश्वपति, गजपति, नरपति आदि किसी की भी मृत्यु परवाह नहीं करती ॥१२॥ मृत्यु कार्य-कारण नहीं जानती, वह वर्ण-अवर्ण भी नहीं समझती और न कर्मनिष्ठ ब्राह्मण पर ही कुछ दया करती है ॥१६॥ व्युत्पन्न, अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष पर भी मृत्यु दया नहीं दिखलाती, बड़े-बड़े समुदाय एकत्रित करने वाले को भी बचने नहीं देती ॥१७॥ पौराणिक, वैदिक, याज्ञिक और ज्योतिषी को भी मृत्यु उठा ले जाती है ॥१९॥ मृत्यु यह चिंता नहीं करती कि यह पुरुष शास्त्रज्ञ है,

वेदज्ञ है अथवा सर्वज्ञ है ॥२१॥ योगाभ्यासी और संन्यासियों का भी मृत्यु विचार नहीं करती और काल को (कुछ समय के लिये) धोखा देने वाले को भी वह बचने नहीं देती ॥२४॥ मृत्यु नहीं जानती कि यह गोस्वामी है, वह तपस्वी को भी नहीं जानती और न मनस्वी या उदासीन का ही कुछ ख्याल करती है ॥२६॥ मृत्यु स्वाधीन और पराधीन किसी को नहीं छोड़ती - सब जीवों को अपना ग्रास बना लेती है ॥३१॥ इस संसार में, कोई मृत्यु के मार्ग पर आ लगे हैं, कोई आधी दूर तक पहुंचे हैं और कोई बूढ़े होकर अंत तक पहुंच चुके हैं ॥३२॥

मृत्यु से कौन छूटा है। आगे-पीछे, सभी को मृत्युपथ पर जाना ही है। ३६॥ मृत्यु के भय से कोई चाहे जहां भाग कर जाए; वह उसे कभी नहीं छोड़ती, वह कभी टल नहीं सकती ॥३८॥ मृत्यु बड़ों बड़ों को नहीं छोड़ती - ब्रह्मा, विष्णु और महेश को भी मृत्यु कुछ नहीं समझती - तथा रामकृष्णादि अवतारों तक की खबर लेती है ॥४०॥ हमारे इस कथन का श्रोतागण क्रोध न करें, क्योंकि सभी को मालुम है कि यह 'मृत्युलोक' है - जो यहां आया है वह अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होगा ॥४१॥ इस कारण यहां आकर, इस जन्म को सफल करना चाहिये और मरने के बाद भी कीर्तिरूप से संसार में जीवित रहना चाहिये ॥४५॥

बड़े वैभव वाले, बड़ी आयु वाले और अगाध महिमा वाले इसी मृत्यु मार्ग से चले गये ॥४६॥ अनेक प्रकार का बल रखने वाले, बहुत काल देखने वाले और अनेक कुलों के कुलवान राजा चले गये ॥४८॥ विद्या के सागर, बल के पर्वत और धनकुबेर इसी मृत्युपथ से चले गये ॥५१॥ बहुत शस्त्रधारी, परोपकारी, धर्मरक्षक इसी मृत्यु मार्ग से चले गये ॥५२॥ तपस्वियों के समूह, अनेक संन्यासी और तत्त्ववेत्ता इसी पथ से चले गये ॥५६॥ न जाने कितने आये और इसी मृत्युपथ से चले गये - कहां तक बतलायें !

इस प्रकार सभी चले गये, परंतु केवल ही वे बचे जो आत्मज्ञान होकर स्वस्वरूप के साथ एकाकार हो गये हैं ॥५९॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ३

समास १०

वैराग्य निरूपण

कभी वासना दुष्ट, ना स्थान पावे ।
कभी चित्त में, पाप बुद्धि न आवे ॥
सुनो चित्त रे नीति ना छोड़ देना ।
सदा सार निःसार की खोज लेना ॥
- मनोबोध .४.

इस समास से श्रीसमर्थ ने अपना तत्त्वज्ञान कहना प्रारंभ किया है। सर्वप्रथम इस संसार को किसी महापूर में उफनती नदी की उपमा देते हुए वे कहते हैं -

यह संसार एक बहुत बड़ी हुई नदी है। इसके बीच अनेक जलचर वास करते हैं और विषैले कालसर्प डँसने के लिये दौड़ते हैं ॥१॥ इस महानदी में आशा, ममता और देहबुद्धि के घड़ियाल मनुष्य को अपनी ओर खींचकर संकट में डाल देते हैं ॥२॥ अहंकार रूपी नक्र पाताल में पकड़ ले जाकर डुबो देता है - वहां से प्राणी फिर निकल नहीं सकता ॥३॥ कामरूपी मगर के पंजे से बच नहीं पाता; तिरस्कार पीछे लगा ही रहता है और मदमत्सर के न हटने से मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है ॥४॥ वासनारूपी नागिन गले में लिपट कर जीभ लपलपाते हुए विष उगलती रहती है ॥५॥ ऐसी दशा में भी मनुष्य 'मेरा मेरा' कहते हुए प्रपंच (गृहस्थी) का बोझा लादे रहता है, डूबता जाता है परंतु बोझा तो छोड़ता नहीं उलटे कुलाभिमान में और अधिक फूल जाता है ॥६॥

इसी प्रकार अनेक प्राणी इस महानदी के भँवरों में बहते चले जाते हैं; परंतु जो भक्ति-भावपूर्वक उस संकट में परमात्मा को पुकारता है, उसके लिये वह स्वयं प्रगट होता है और उसे पार लगाता है! शेष, जो अभक्त हैं, वे बेचारे बहते ही चले जाते हैं ॥७, ९॥

भगवान् भक्ति-भाव का भूखा है, वह भक्ति-भाव पर ही भूलता है और भाविक पर प्रसन्न होकर संकट में उसकी रक्षा करता है ॥१०॥ जो परमात्मा पर प्रेम करता है उसकी परमात्मा भी चिंता रखता है। वह अपने दास के सारे दुःख दूर करता है ॥११॥ जिसका जैसा भाव है उसके लिये परमात्मा भी वैसा ही है। वह प्राणीमात्र का अंतर्यामी है और सबका भाव जानता है ॥१३॥ जो जैसा होता है उसका वैसा ही प्रतिबिंब दर्पण में दिखाई देता है; यदि हम आंखें पसारकर देखते

हैं तो वह भी नेत्र फाड़कर घूरता है ॥१७॥ जैसा भाव प्रतिबिम्बित होता है, वैसा ही परमात्मा भी बन जाता है - जो जैसे उसको भजता है, उसके लिये वह वैसा ही फलता है ॥१९॥ जो परमात्मा का भजन करते हैं, उनकी माता धन्य है! उन्हीं का जन्म सार्थक है ॥२३॥ बहुत जन्मों के बाद, यह नरदेह, जिसके द्वारा जन्म-मरण दूर होता है, ईश्वर से भेंट कराता है ॥२४॥ यह आयुष्य एक रत्नों से भरी हुई मंजूषा है। इसमें ईश्वरभजन के उत्तम रत्न रखे हुए हैं। वे रत्न ईश्वर को अर्पण कर आनंद मनाना चाहिये ॥२७॥ हरिभक्त यद्यपि सांसारिक वैभव से हीन होते हैं, परंतु वास्तव में वे ब्रह्मा, आदि से भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे सदा नैराश्रय के आनंद से ही संतुष्ट रहते हैं ॥२८॥ सिर्फ ईश्वर की कमर पकड़कर जो नैराश्रय रखते हैं, उन भाविकों को जगदीश, सब प्रकार से संभालता है ॥२९॥ बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिला है, परंतु समय का कौन भरोसा? जिस प्रकार पक्षी दसों दिशाओं में उड़ जाते हैं उसी प्रकार न जाने किस समय, यह सारा वैभव, स्त्री, पुत्र, धन आदि कहां चले जाएंगे! ॥३९, ४०॥ कहां की माता, कहां का पिता, कहां की बहन और कहां का भ्राता! कहां के सुहृद और कहां के स्त्री और पुत्र ॥४५॥ ये सारे मिथ्या हैं - ये तेरे दुःख के साथी नहीं हैं ॥४६॥ कहां का आया प्रपंच और कहां का कुल! किस के लिये व्याकुल होता है? धन-धान्य और लक्ष्मी आदि सब अनित्य है ॥४७॥ पूर्व के अनेकानेक जन्मों में तेरे अनेकानेक माता-पिता, सगे संबंधी हो गये ॥५१॥ ये सब कर्म-योग से एक स्थान में जन्म लेकर एकत्र हुए। अरे पढ़तमूर्ख! तूने इन सबको अपना कैसे मान लिया! ॥५२॥ जब तेरा शरीर ही अपना नहीं, तब अन्यों की क्या गिनती? इस कारण, अब भक्तिभाव से एकमात्र परमात्मा का ही भरोसा रख ॥५३॥ इस संपूर्ण विश्व का संचालक वह देवाधिदेव बड़ा दयालु है; उसकी लीला कोई नहीं जानता; वह कृपापूर्वक सारे जीवों की रक्षा करता है ॥५८॥ ऐसे परमात्मा "श्रीराम" को छोड़कर जो विषयकामना रखते हैं वे प्राणी दुरात्मा और अधम हैं - वे अपने किये का फल पाते हैं ॥५९॥ विषय से उत्पन्न हुए जितने सुख हैं उनमें एम दुःख भरा है, इसलिये 'राम' में प्रीति रखो ॥६५॥

यह निरूपण सुनकर भाविक शिष्य कहता है, हे महाराज, परमात्मा कहां है, मुझे कैसे मिलेगा, उसका भजन किस प्रकार करें? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर में आने वाले समासों में नवविधा भक्ति का निरूपण होगा ॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ४

समास १

श्रवण भक्ति

सुनो चित्त कल्याण साधो हमारा ।
गहो राम के पांव की भक्तिधारा ॥
महाराज आराध्य श्रीमारुति के ।
त्रिलोकेश उद्धारकर्ता सभी के ॥

- मनोबोध. २२.

हे गणनाथ! तेरी जय हो, जय हो। तू विद्या-वैभव में समर्थ है। अब कृपा करके मुझे अध्यात्म विद्या का परमार्थ बताने की शक्ति दे ॥१॥ हे वेदमाता शारदा! तुझे भी मैं नमन करता हूँ। तेरे ही प्रताप से सकल सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और तेरे ही कारण मन स्फूर्ति पाकर मनन करने में प्रवृत्त होता है ॥२॥ अब सद्गुरु का स्मरण करता हूँ, जो श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है और जिसकी कृपा से ज्ञान-विवेक प्रगट होने लगता है ॥३॥ श्रोताओं ने यह अच्छा प्रश्न किया है कि, भगवद्भजन कैसे किया जाये। अतएव, अनेक ग्रन्थों और सत्शास्त्रों के आधार से, नवधा भक्ति का वर्णन किया जाता है ॥४-५॥

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥१॥

श्रवण, कीर्तन, विष्णु-स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन - ये भक्ति के नौ प्रकार हैं। इनमें से अब प्रत्येक का निरूपण एक-एक समास में किया जायेगा। श्रोतागण सावधान होकर सुनें ॥६॥

पहली भक्ति अर्थात् श्रवण भक्ति यह है कि, हरिकथा, पुराण और नाना प्रकार का अध्यात्म निरूपण सुनना चाहिये ॥७॥ कर्ममार्ग, उपासना मार्ग, ज्ञानमार्ग, सिद्धान्तमार्ग, योगमार्ग और वैराग्य मार्ग - ये सब सुनते जाना चाहिये ॥८॥ अनेक प्रकार के व्रत, तीर्थ और दानों की महिमा सुननी चाहिये ॥९॥ अनेक प्रकार का माहात्म्य, विभिन्न स्थानों का वर्णन, अनेक

मंत्र, साधन, तप और पुरश्चरण सुनना चाहिये ॥१०॥ जपी, तपी, तामसयोगी, निग्रही, हठयोगी, शक्तिमार्गी, अघोरयोगी - ये कैसे होते हैं, वह सुनना चाहिये ॥१३॥

अनेक प्रकार की मुद्रा, आसन, लक्षस्थान, पिंडज्ञान और तत्त्वज्ञान का वर्णन सुनना चाहिये ॥१४॥ नाना प्रकार के पिंडों की रचना, भूगोल, सृष्टिरचना इस संबंध में सुनना चाहिये ॥१५॥ चन्द्र, सूर्य, तारामंडल, ग्रहमंडल, मेघमंडल, इक्कीस स्वर्ग और सात पाताल किस प्रकार के हैं, वह सुनना चाहिये ॥१६॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश के स्थान; इंद्रादि देव और ऋषियों के स्थान; वायु, वरुण, कुबेर के स्थान कैसे हैं, वह सुनना चाहिये ॥१७॥ राग का ज्ञान, ताल का ज्ञान, नृत्य का ज्ञान, वाद्य का ज्ञान, अमृतसिद्धि-योग और प्रसंग का ज्ञान कैसे होता है - वह सुनना चाहिये ॥२०॥ चौदह विद्या, चौंसठ कला, सामुद्रिक लक्षण, मनुष्य के बत्तीस लक्षण और नाना प्रकार की कला कैसी होती है, वह सब सुनना चाहिये ॥२१॥ नवविधा भक्ति और चतुर्विधा मुक्ति कैसी होती है, और उत्तम गति कैसे मिलती है - यह सब सुनना चाहिये ॥२५॥ पिण्ड और ब्रह्माण्ड की रचना, नाना प्रकार के तत्त्वों का विवेक और सार-असार का विचार सुनना चाहिये ॥२६॥ वेद, शास्त्र पुराण और "तत्त्वमसि" आदि महावाक्यों के विवरण, तनुचतुष्टय का निरसन किस प्रकार होता है, सो सुनना चाहिये ॥२८॥

ऐसे सुनना तो सब चाहिये; परंतु सार ढूँढ लेना चाहिये; और असार को पहचान कर तुरंत छोड़ देना चाहिये - इसका नाम है श्रवणभक्ति ॥२९॥ सगुण परमात्मा के चरित्र सुनना चाहिये अथवा निर्गुण की अध्यात्म ज्ञान के द्वारा खोज करनी चाहिये - यही श्रवण भक्ति के लक्षण हैं ॥३०॥ सगुण परमात्मा के गुणों का और निर्गुण के अध्यात्म निरूपण का श्रवण करना चाहिये और ईश्वर से विभक्त न रहकर भक्ति तत्त्व के मूल की खोज करनी चाहिये ॥३३॥ यही श्रवणभक्ति है।

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ४

समास २

कीर्तन भक्ति

न जिह्वा कहे नाम तो मुक्ति कैसी।
अहंता बने पैर में शृंखलासी ॥
न लो नाम तो अंत में कष्ट पाओ
कहो राम हे राम श्रीराम गाओ ॥

- मनोबोध . ९७.

नवधा भक्ति में से श्रवण भक्ति का निरूपण हो चुका, अब दूसरी कीर्तन भक्ति सुनिये ॥१॥ सगुण परमात्मा के गुणों का कीर्तन करना चाहिये और अपनी वाणी से जगत में यथायोग्य रीति से भगवान् की कीर्ति फैलानी चाहिये ॥२॥ बहुत से ग्रन्थ पढ़ने चाहिये, उनमें कहे विचार कंठस्थ करने चाहिये और भगवान् की कथा निरंतर कहते रहना चाहिये ॥३॥ नित्य नये उत्साह के साथ, हरिकथा बढ़ाने में, अत्यन्त उद्योग करना चाहिये और हरिकीर्तन से संपूर्ण ब्रह्मांड भर देना चाहिये ॥५॥ अत्यंत प्रेम और रुचि के साथ, सदा सर्वदा हरिकीर्तन के लिये तत्पर रहना चाहिये ॥६॥ भगवान् को कीर्तन बहुत प्रिय है; कीर्तन से समाधान होता है। कलियुग में बहुत मनुष्यों को हरिकीर्तन ही तारता है ॥७॥ प्रेम के साथ परमात्मा का यश, कीर्ति, प्रताप और महिमा वर्णन करनी चाहिये, इससे भगवद्भक्तों की आत्मा संतुष्ट होती है ॥९॥ ताल, मृदंग, हरिकीर्तन, संगीत, नृत्य, तान-मान और नाना प्रकार की कथाओं का अनुसंधान न टूटे, इसका ध्यान रखकर कीर्तन करना चाहिये ॥११॥ करुणा-कीर्तन के आनंद में आकर, उत्साह के साथ कथा कहनी चाहिये और श्रोताजनों के श्रवण-पुट आनंद से भर देना चाहिये ॥१२॥ कंप, रोमांच, स्फुरण और प्रेमाश्रु-सहित परमेश्वर के गुणानुवाद गाना चाहिये और देवस्थान में साष्टांग नमस्कार करना चाहिये तथा लीनता के साथ लौटना चाहिये ॥१३॥ पद, दोहा, श्लोक, प्रबंध, धाटी मुद्रा आदि अनेक छंद, वीरभाटी (वीरश्री का भाषण) और विनोद, अवसर देखकर करना चाहिये ॥१४॥ भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के लक्षण, नीति, न्याय और स्वधर्म की रक्षा का उपाय; साधन

मार्ग और अध्यात्म-निरूपण ये सब अच्छी तरह से बतलाना चाहिये ॥१६॥ अवसर के अनुसार हरि की कथा कहनी चाहिये - सगुणोपासक लोगों में सगुण परमात्मा की कीर्ति का वर्णन करना चाहिये और निर्गुण का अवसर आने पर अध्यात्म-विद्या पर प्रवचन करना चाहिये ॥१७॥ वेदों का परायण करना चाहिये, लोगों को पुराण सुनाना चाहिये तथा माया और ब्रह्म का खुलासा, पूरे तौर पर करना चाहिये ॥१९॥ हरिकीर्तन में वैराग्य की रक्षा करनी चाहिये तथा ज्ञान के लक्षण भी छूटने नहीं देना चाहिये। परम चतुर और विलक्षण पुरुष सभी कुछ संभालकर कीर्तन करते हैं ॥२१॥ कीर्तन में ऐसा कुछ कथन नहीं करना चाहिये जिससे सुनने वाले के मन से सत्य का समाधान चला जाए और भ्रम उत्पन्न हो। कीर्तन में नीति-न्याय के साधनों की भी रक्षा करनी चाहिये ॥२२॥ सगुण परमात्मा-के गुणानुवाद को कीर्तन कहते हैं और अद्वैत के विवरण को अध्यात्म-निरूपण कहते हैं। निर्गुण का निरूपण करते समय भी सगुण का खंडन नहीं करना चाहिये ॥२३॥ किसी का खंडन न करते हुए और वेदाज्ञा का मंडन करते हुए, ऐसा ज्ञान बतलाना चाहिये जिससे सारे मनुष्य सदाचार में प्रवृत्त हों ॥२५॥ अस्तु। सब वाद विवादों को छोड़कर परमात्मा के गुणानुवाद का कीर्तन करना चाहिये। इसी का नाम भगवद्भजन है और यही दूसरी भक्ति है ॥२६॥ भगवान् के गुणों का कीर्तन करने से बड़े-बड़े पाप कट जाते हैं और उत्तम गति मिलती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि, कीर्तन भक्ति से अवश्य भगवद्प्राप्ति होती है ॥२७॥ कीर्तन से वाणी पवित्र होती है, सत्पात्रता आती है और अनेक लोग सुशील, सदाचारणी बनते हैं ॥२८॥ कीर्तन से मन की चंचलता जाती है, बुद्धि स्थिर होती है और श्रोता-वक्ता, दोनों का संदेह दूर होता है ॥२९॥ ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी सदा सर्वदा हरिकीर्तन करते रहते हैं; इसी कारण उन्हें स्वयं नारायण की पदवी मिली हुई है ॥३०॥ अतएव कीर्तन की महिमा अगाध है, कीर्तन से परमात्मा प्रसन्न होता है। जहां भगवान् के गुणानुवाद का कीर्तन होता है वहीं सारे तीर्थ और स्वयं वह जगदात्मा निवास करता है।

॥ जय-जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ४

समास ३

नामस्मरण भक्ति

उषःकाल में राम का ध्यान कीजे ।
न बोलें वृथा, राम का नाम लीजे ॥
सदाचार का ध्यान जो भी रखेगा ।
वही मान्य होगा वही धन्य होगा ॥
- मनोबोध . ३.

पिछले समास में सब को पावन करने वाली कीर्तन भक्ति का वर्णन किया, अब विष्णु स्मरण नामक तीसरी भक्ति सुनिये ॥१॥ मन में ईश्वर का स्मरण करना चाहिये, उसके अनंत नामों का, अखंड रीति से, जप करना चाहिये - नामस्मरण से समाधान मिलता है ॥२॥ नित्य-नियम के साथ, सुबह दोपहर, सन्ध्या-समय और सदासर्वदा, अर्थात् अखंड, नामस्मरण करते रहना चाहिये ॥३॥ सुख, दुःख, उद्वेग और चिंता के समय अथवा आनंद में होने पर, या किसी भी समय, नामस्मरण के बिना नहीं रहना चाहिये ॥४॥ हर्ष के समय, दुःख के समय, पर्व आदि का उत्सव करते समय, किसी शुभ कार्य का प्रारंभ करते समय, विश्राम के समय और निद्रा के समय नाम-स्मरण करना चाहिये ॥५॥ संकट के समय, गृहस्थी के अनेक झंझटों के समय अथवा किसी दुर्दशा के आने पर, तुरंत ही नामस्मरण करना चाहिये ॥६॥ चलते, बोलते, काम करते, खाते-पीते, सुखी होते हुए, नाना प्रकार के उपभोग भोगते समय भी परमात्मा का नाम नहीं भूलना चाहिये ॥ संपत्ति हो या विपत्ति या चाहे जैसी कालगति आ पड़े, नामस्मरण नहीं छोड़ना चाहिये ॥७॥ वैभव, सामर्थ्य, सत्ता, अनेक पदार्थ और बड़े-बड़े सुख भोगते समय भी नामस्मरण नहीं छोड़ना चाहिये ॥९॥ पहले बुरी दशा हो, फिर अच्छी दशा हो अथवा अच्छी दशा के बाद बुरी दशा हो - चाहे जैसा प्रसंग हो, परंतु नाम नहीं छोड़ना चाहिये ॥१०॥ भगवान् के नामों का स्मरण करने से संकट नाश होते हैं; विघ्न दूर होते हैं और सद्गति मिलती है ॥११॥ भूत, पिशाच, नाना बाधाएं, ब्रह्मग्रह, ब्रह्मराक्षस, मंत्र-भ्रष्टता और नाना प्रकार के खेद नामस्मरण से नाश होते हैं ॥१२॥ अखंड भगवन्नाम-स्मरण से विषबाधा दूर

होती है, सारे रोग दूर होते हैं और अंतकाल में उत्तम गति मिलती है ॥१३॥ बचपन में, युवावस्था में, कठिन समय में, वृद्धावस्था में, सब समय में और अंतसमय में, नामस्मरण करना चाहिये ॥१४॥ नामस्मरण की महिमा शंकरजी अच्छी तरह जानते हैं। वे काशी में राम-नाम का उपदेश करते रहते हैं। रामनाम की महिमा के ही कारण काशी को मुक्तिक्षेत्र कहा जाता है ॥१५॥

“राम राम” का उलटा नाम “मरा मरा” जप कर वाल्मीकि सहज ही मुक्त हो गये और उन्हें इतना ज्ञान हो गया कि सौ करोड़ श्लोकों में श्रीरामचन्द्रजी का चरित्र, उनके अवतार के पहले ही रच लिया ॥१६॥ परमात्मा के “हरि” नाम का जप कर के प्रहलाद मुक्त हो गये, अनेक प्रकार के संकटों से बचे और “नारायण” नाम का जप कर पापी अजामिल भी पवित्र हो गया ॥१७॥ नामस्मरण से पाषाण समान जड़ पदार्थ भी तर गये! असंख्य भक्तों का उद्धार हो गया और महापापी भी परम पवित्र हो गये ॥१८॥

परमेश्वर के अनंत नाम, नित्य-नियमपूर्वक, स्मरण करने से लोग तर जाते हैं। नामस्मरण करने से यमयातना का भय नहीं रहता ॥१९॥ उसके हजारों नामों में से किसी एक ही नाम का स्मरण करने से जीवन सुफल हो जाता है, नामस्मरण करने से मनुष्य पुण्य-श्लोक बन जाता है ॥२०॥ मनुष्य कुछ न करे, सिर्फ “राम” यह नाम जपे, तो इतने से ही वह चक्रपाणि, परम रक्षक परमेश्वर, प्रसन्न होकर भक्त को संभालता है ॥२१॥ जो सदा नाम-स्मरण करता है वह पुण्यात्मा है। “राम” नाम से महापापों के पर्वत नाश हो जाते हैं ॥२२॥ भगवन्नामस्मरण की महिमा अगाध है - वर्णन नहीं की जा सकती! नामस्मरण से अनेक लोग मुक्त हो गये - स्वयं महादेवजी भी जब हलाहल से व्याकुल हुए, तब “राम” नाम ही जप कर उस संकट से बचे ॥२३॥ ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, पुरुष, सब को, नामस्मरण का अधिकार है। नाम स्मरण के लिये छोटे-बड़े का विचार नहीं है। नाम स्मरण से जड़ और मूढ़ भी तर जाते हैं ॥२४॥ अतएव परमेश्वर के नामों का अखंड रीति से स्मरण करना चाहिये और भगवान् के रूप का मन में ध्यान करना चाहिये - यही तीसरी भक्ति है ॥२५॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ४

समास ४

पादसेवन भक्ति

जहां से बनी सृष्टि त्रैलोक्य आया ।
 नहीं हैं बताते नहीं कोई पाया ॥
 नहीं प्राप्त सीधा महागुप्त मानो ।
 गुरु की कृपा से ही है प्राप्य जानो ॥

- मनोबोध . १७९.

पिछले समास में नामस्मरण भक्ति का निरूपण किया गया। अब पादसेवन नामक चौथी भक्ति सुनिये ॥१॥ मोक्ष की इच्छा रख कर तन, मन और वचन से सद्गुरु के चरणों की सेवा करना ही पादसेवन भक्ति है ॥२॥ जन्ममरण की यातनाएं दूर करने के हेतु सद्गुरु के चरणों में अनन्यता रखने का ही नाम पादसेवन है ॥३॥ सद्गुरु-कृपा के बिना इस संसार से पार होने के लिये कोई उपाय नहीं है। इस कारण प्रेमपूर्वक सद्गुरु-चरणों की सेवा करनी चाहिये ॥४॥ सद्गुरु, संपूर्ण सारासार का विचार करा कर, परमात्मदर्शन करा देता है ॥५॥ वस्तु (ब्रह्म) दृष्टि से दिखाई नहीं देती; मन को भास नहीं होती और संगत्याग के बिना अनुभव में नहीं आती ॥६॥ संगत्याग, आत्मनिवेदन, विदेहस्थिति, अलिप्तता, सहजस्थिति, उन्मनी अवस्था और विज्ञान ये सातों एकरूप हैं ॥७॥ इनके अलावा अन्य नाम भी हैं। उन्हें समाधान के संकेत-वचन कहना चाहिये। साधुचरणों की सेवा करने से सब मालुम हो जाता है ॥९॥ वेद, वेदों का रहस्य, वेदांत, सिद्ध, सिद्ध-भाव, सिद्धान्त का रहस्य, अनुभव, अनुभव की बात, अनुभव का फल और सत्य वस्तु (ब्रह्म) आदि, बहुत से, अनुभव के द्वार हैं - अर्थात् इन सब द्वारों का ज्ञान प्राप्त हो जाने से अनुभव आता है और यह ज्ञान संतों की सेवा करने से मिलता है; अतएव इस चौथी भक्ति (संतसेवा) के योग से गौप्य (परब्रह्म) प्रगट हो जाता है ॥१०, ११॥ वह प्रगट होते हुए गौप्य है और गौप्य होते हुए भी प्रगट है - और वह "गौप्य" और "प्रगट" दोनों से अलग है। इसका

मार्ग - उसे जानने का उपाय - गुरुगम्य हैं, अर्थात् महात्माओं की सेवा के बिना - चौथी भक्ति किये बिना - उसका मार्ग मिल नहीं सकता ॥१२॥ मार्ग है; पर वह आकाश की तरह शून्य है, गुप्त है - वह सब प्रकार से शंकापूर्ण है; और यदि उस अलक्ष को देखने जाते हैं तो वह दिखाई नहीं देता ॥१३॥ अलक्ष से जिसे लिखते हैं, ध्यान से जिसे ध्याते हैं, वही (परब्रह्म) त्रिविधा प्रतीति से - अर्थात् शास्त्र, गुरु और आत्मा, तीनों का अनुभव एक करके - स्वयं हो जाना चाहिये ॥१४॥ अस्तु। ये अनुभव के द्वार सारअसार विचार से मालुम होते हैं और सत्य बात सत्संग से अनुभव में आती है ॥१५॥ यदि सत्य देखने जाते हैं तो असत्य का अभाव पाया जाता है और यदि असत्य देखते हैं तो सत्य नहीं दिखता; क्योंकि सत्यासत्य का देखना देखने वाले के पास है ॥१६॥ देखने वाला जिसे देखने लगता है उसी के रूप में जब वह हो जाता है - अर्थात् दृष्टा, दर्शन और दृश्य, ये तीनों, जब एक हो जाते हैं तब समाधान प्राप्त होता है ॥१७॥ कैसा ही समाधान क्यों न हो, वह सद्गुरु से ही मिलता है - सद्गुरु के बिना कदापि सन्मार्ग नहीं मिल सकता ॥१८॥ नाना प्रकार के प्रयोग, साधन, परिश्रम, उद्योग और विद्याभ्यास अथवा किसी प्रकार के अभ्यास से भी गुरुगम्य (मार्ग) मिल नहीं सकता ॥२०॥ इसलिये ज्ञानमार्ग जानने के लिये सत्संग ही करना चाहिये - इसके बिना उसकी बात ही ना करो ॥२१॥ सद्गुरु के चरणों की सेवा करनी चाहिये - इसी का नाम पादसेवन है - यही चौथी भक्ति है ॥२२॥ जनरुढ़ि की दृष्टि से देव, ब्राह्मण, महानुभाव, सत्पात्र और भजन के प्रति दृढ़तापूर्वक सद्भाव रखना भी "सेवा भक्ति" है; परंतु वास्तव में सद्गुरु के ही चरणों की सेवा करने का नाम पादसेवन है ॥२३/२४॥ यह पादसेवन नामक चौथी भक्ति तीनों लोकों को पावन करती है और इससे साधक को सायुज्य मुक्ति मिलती है ॥२५॥ अतएव, चौथी भक्ति का निर्णय बड़े महत्व का है - इससे अनेक मनुष्य तरते हैं ॥२६॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ४

समास ५

अर्चन भक्ति

सदा ईश के कार्य में देह घोले ।
सदा जीभ से राम का नाम बोले ॥
स्वधर्मस्थ हो वो चले तत्वज्ञानी ।
वही धन्य है राम का दास ज्ञानी ॥

- मनोबोध .४८.

पांचवी भक्ति का नाम अर्चन है। 'अर्चन' देवतार्चन को कहते हैं - अर्थात् शास्त्रों के अनुसार भगवान् की पूजा करनी चाहिये ॥२॥ नाना प्रकार के आसन तथा अन्य सामग्री, वस्त्र, अलंकार, भूषण आदि के सहित मानसपूजा और मूर्ति का ध्यान करना पांचवीं भक्ति है ॥३॥ देव, ब्राह्मण और अग्नि की पूजा करना, साधु संत और अतिथि-अभ्यागत की पूजा करना, यती, महानुभाव और गायत्री की पूजा करना पांचवीं भक्ति है ॥४॥ धातु, पाषाण और मृत्तिका की मूर्ति का पूजन, चित्र-लिखित मूर्ति और सत्पुरुषों का पूजन, अपने घर के देवताओं का पूजन करना पांचवीं (अर्चन) भक्ति है ॥५॥ सप्त अंकित और नव अंकित शिलाएं, शालिग्राम, शकल, चन्द्र-अंकित लिंग, सोमकांत, सूर्यकांत, बाण-तांडल, नर्मदेश्वर आदि मूर्तियों की पूजा करनी चाहिये ॥६॥ गणेश, शारदा, विट्ठल, बालकृष्ण, जगन्नाथ, तांडवमूर्ति, श्रीरंग, हनुमंत और गरुड़ की मूर्तियां देवतार्चन में पूजना चाहिये ॥७॥ केशव, नारायण और माधव की मूर्ति, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन की मूर्ति, त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर की मूर्ति तथा हृषीकेश और पद्मनाभि की मूर्ति पूजना चाहिये ॥१०॥ (इस प्रकार) हरि और हर की अनंत मूर्तियां, भगवान् जगदात्मा और जगदीश की मूर्तियां, शिव और शक्ति की अनंत मूर्तियां देवतार्चन में पूजना चाहिये ॥१२॥ इस प्रकार सारे जगत में परमेश्वर की अनेक मूर्तियां हैं, सबका अर्चन करना पांचवीं भक्ति है ॥१४॥ तीर्थक्षेत्रों में जाने पर वहां के देवताओं की पूजा करनी चाहिये - नाना प्रकार

की सामग्रियों से परमेश्वर का अर्चन करना चाहिये ॥१७॥ पंचामृत, चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, कपूर आदि अनेक परिमल द्रव्यों से भगवान् की पूजा करनी चाहिये ॥१८॥ नाना प्रकार के भोजनों का सुंदर नैवेद्य, अनेक फल, तांबूल, दक्षिणा, अनेक प्रकार के अलंकार, दिव्य वस्त्र और वनमाला आदि सामग्री भगवान् को अर्पण करनी चाहिये ॥१९॥ पालकी, छत्र, सुखासन, मेघाडम्बर, सूर्यमुखी, पताका, निशान आदि सामग्री, वीणा, करताल, झांझ, मृदंग आदि नाना प्रकार के वाद्य, इत्यादि की धूमधाम से, भगवान् के उत्सव करने चाहिये और भक्तिभावपूर्वक अनेक संतों तथा कीर्तनकारों का गान कराना चाहिये ॥२०,२१॥ वापी, कूप, सरोवर, देवालय शिखर, राजांगण, तुलसीवन, इत्यादि बनवाना चाहिये ॥२२॥ मठ, मठियां, धर्मशाला, देवस्थान में निवासस्थान बनवाना चाहिये ॥२३॥ अनेक प्रकार के पडदे, मंडप, चंदोवे और नाना प्रकार के रत्न, तोरण, घंटा, हाथी, घोड़े और गाड़ियां देवालयों में समर्पण करना चाहिये ॥२४॥ वन, उपवन, पुष्पवाटिका और तपस्वियों की पर्णकुटियां बनवाना चाहिये। यही सब भगवान् की पूजा है ॥२६॥

इस प्रकार तन, मन, वचन, चित्त, जीव, प्राण और सद्भाव से, भगवान् का अर्चन करना चाहिये - इसी का नाम अर्चन भक्ति है ॥२९॥ इसी रीति से सद्गुरु का भी पूजन करके उनकी अनन्य शरण में रहना चाहिये ॥३०॥ यदि उपर्युक्त प्रकार से सांगोपांग पूजा न बन पड़े तो परमेश्वर की मानसपूजा तो अवश्य करनी चाहिये। मानसपूजा का बड़ा महत्व है ॥३१॥ मानसपूजा का लक्षण यह है कि मन ही मन में अपना रूप, भगवान् का रूप और संपूर्ण पूजन-सामग्री कल्पित करके परमात्मा का अर्चन करना चाहिये ॥३२॥ मानसपूजा में जिस-जिस पदार्थ की अपने को जरूरत हो - उस उसकी कल्पना करके वह परमेश्वर को अर्पण करना चाहिये ॥३३॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ४

समास ६

वन्दन भक्ति

बनो नम्र शालीन वाणी कृति में ।
तुम्हें देख संतोष हो सज्जनों में ॥
भलाई करो जन्म का ध्येय जानो ।
प्रभूमूर्ति को नित्य ही पूज्य मानो ॥

- मनोबोध . १०२.

ईश्वर, संत-साधु और सज्जनों को नमस्कार करना वन्दनभक्ति है ॥२॥ सूर्य, ईश्वर और सद्गुरु को साष्टांग भाव से नमस्कार करना चाहिये ॥३॥ अनेक देवताओं की प्रतिमाओं को, ईश्वर को और गुरु को साष्टांग प्रणाम कहा है और अन्यों को, उनके अधिकार के अनुसार, नमन करना चाहिये ॥४॥ महादेव, विष्णु, सूर्य और हनुमान के दर्शन से पाप कटते हैं तथा नित्य-नियम से, इनको नमस्कार करने से विशेष पुण्य मिलता है ॥६॥ भक्त, ज्ञानी, वीतरागी, महानुभाव, तापसी, योगी और सत्पात्र को देख कर तत्काल ही नमस्कार करना चाहिये ॥७॥ वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ, सर्वज्ञ, पंडित, पौराणिक, विद्वज्जन, याज्ञिक, वैदिक और पवित्र जनों को नमस्कार करते रहना चाहिये ॥८॥ जिसमें कोई विशेष गुण दिखे उसी में सद्गुरु का अधिष्ठान है; अतएव, अति आदर से, उसको नमन करना चाहिये ॥९॥ गणेश, सरस्वती, शक्ति, विष्णु और शिव की अनंत मूर्तियां हैं, उन सब को प्रेमपूर्वक, नमस्कार करना चाहिये ॥१०॥ सारे देवताओं को किया गया नमस्कार एकमात्र परमेश्वर को ही प्राप्त होता है ॥११॥

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

अतएव, सारे देवताओं को, बड़े आदरपूर्वक, नमस्कार करना चाहिये। देवताओं में परमात्मा का अधिष्ठान मानने से परम सुख होता है ॥१२॥

जैसे देवता परमात्मा का अधिष्ठान हैं वैसे ही सत्पात्र लोग सद्गुरु से अधिष्ठित हैं, इसलिये इन सबको नमस्कार करना चाहिये ॥१३॥

नमस्कार से लीनता आती है, नमस्कार से विकल्प नाश होता है, और नमस्कार से अनेक प्रकार के सज्जनों से मित्रता होती है ॥१४॥ नमस्कार से दोष जाते हैं, नमस्कार से अन्याय क्षमा होते हैं और नमस्कार से संदेह दूर होते हैं ॥१५॥ नमस्कार से कृपा उमड़ती है, नमस्कार से प्रसन्नता बढ़ती है और नमस्कार से सद्गुरु साधकों पर प्रसन्न होते हैं ॥१७॥ सदैव नमस्कार करते रहने से - सदा सब से विनम्र रहने से - पापों के पर्वत नाश होते हैं और परमपिता परमेश्वर कृपा करता है ॥१८॥ नमस्कार से पतित लोग पावन होते हैं, नमस्कार से संतों का आश्रय प्राप्त होता है और नमस्कार से जन्म-मरण दूर होता है ॥१९॥ कोई बड़ा भारी अन्याय करके आया हो और साष्टांग नमस्कार करे तो वह अन्याय श्रेष्ठों ने क्षमा करना ही चाहिये ॥२०॥ अतएव, नमस्कार से बढ़कर और कोई अनुकरण करने योग्य बात नहीं है। नमस्कार करने से सद्बुद्धि प्राप्त होती है ॥२१॥ नमस्कार करने में कोई व्यय नहीं होता; कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता और न किसी सामग्री की आवश्यकता होती है ॥२२॥ संसार से छूटने के लिये, नमस्कार के समान और कोई सहज उपाय नहीं है; परंतु नमस्कार अनन्य होकर करना चाहिये! इतना सहज उपाय छोड़कर अनेक साधनों और उद्योगों में व्यर्थ क्यों परिश्रम करने हैं? ॥२२॥ साधक जब भक्ति-भावपूर्वक नमस्कार करता है तब साधु को उसकी चिंता लग जाती है; और वह उसको मुक्ति पाने का सुगम मार्ग बतला देता है, उसे उसके मूल स्थिति (आत्मस्वरूप) की प्राप्ति करा देता है ॥२४॥ अतएव वन्दन भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। वन्दना करने से बड़े-बड़े सत्पुरुष प्रसन्न हो जाते हैं। यही छठवीं भक्ति है ॥२५॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ४

समास ७

दास्य भक्ति

नहीं मत्सराग्नि न उन्मत्तता है ।
 नहीं स्वार्थ कोई उपाधि नहीं है ॥
 सुवाचा सदा बोलना नम्र वाणी ।
 वही धन्य है राम का दास ज्ञानी ॥

- मनोबोध . ५१.

पिछले समास में वंदन भक्ति का निरूपण किया गया; अब सातवीं भक्ति 'दास्य' का वर्णन सुनिये ॥१॥ इस भक्ति में, देवस्थान में सदैव उपस्थित रहकर जो कोई काम आ पड़े, वह करना चाहिये ॥२॥ देवस्थान का वैभव संभालना चाहिये, उसमें कुछ न्यूनता नहीं होने देना चाहिये - भगवान के भजन का खूब विस्तार करना चाहिये ॥३॥ टूटे देवालय सुधारने चाहिये, टूटे सरोवर बांधने चाहिये, धर्मशालाएं और निवासस्थान जारी रखना चाहिये और नित्य नये-नये काम शुरू करने चाहिये ॥४॥ नाना प्रकार की जीर्ण-जर्जर रचनाओं का जीर्णोद्धार करना चाहिये। जो काम आ पड़े वह शीघ्र ही करना चाहिये ॥५॥ हाथी, घोड़ा, रथ, सिंहासन, चौकियां, पालकी, सुखासन, मंचान, डोले और विमान, नये-नये, बनवाना चाहिये ॥६॥ मेघडाम्बर, छत्र, चामर, सूर्यमुखी, निशान आदि बहुतसी सामग्रियां, अत्यंत आदर से, नित्य नवीन नवीन, बनवाना चाहिये ॥७॥ नाना प्रकार के यान, बैठने के उत्तम स्थान और बहुत प्रकार के सुवर्ण-आसन यत्न के साथ बनवाना चाहिये ॥८॥ भवन, कोठरियां, पेटी, संदूकें, नादें, डहरी, घड़े और सब द्रव्य बड़े यत्न से रखना चाहिये ॥९॥ अलंकार, भूषण, दिव्य वस्त्र, मनोहर रत्न, सुवर्ण आदि नाना प्रकार की धातुओं के पात्र प्रयत्नपूर्वक एकत्र करना चाहिये ॥१०॥ पुष्पवाटिका और नाना प्रकार के श्रेष्ठ वृक्षों के बाग लगाना चाहिये और उनको जल से सींचते रहना चाहिये ॥११॥ पशुशाला, पक्षिशाला, चित्रशाला, नाट्यशाला, इत्यादि

देवस्थान में तैयार करवाने चाहिये और नाना प्रकार के वाद्य और गुणी गायक एकत्र करने चाहिये ॥१३॥ पाकशाला, भोजन गृह, शयनागार, धर्मशाला, सामग्री रखने का स्थान, इत्यादि विशाल स्थल तैयार करवाने चाहिये ॥१४॥ अनेक प्रकार की वस्तुओं के भिन्न-भिन्न टूटे स्थान नूतन बनवाने चाहिये। भगवान का वैभव अनिर्वचनीय है, कहां तक बतलावें ॥१६॥ सब कामों के लिये तैयार रहना चाहिये, भगवान की सेवा में तत्पर रहना चाहिये - कोई काम भूलना नहीं चाहिये ॥१७॥ जयंतियां और पर्व आदि के महोत्सव सदैव इस धूमधाम के साथ करना चाहिये कि जिन्हें देखकर स्वर्ग के देवता भी मुग्ध हो जायें ॥१८॥ भगवान् की छोटी से छोटी सेवा भी अंगीकार करना चाहिये और मौका आ जाने पर सब प्रकार से सावधान रहना चाहिये ॥१९॥ पादप्रक्षालन, स्नान, आचमन, चदनाक्षत, वसन, भूषण, आसन, जल, नानाप्रकार के पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदि सब ठीक रखना चाहिये ॥२१॥ शयन के लिये उत्तम स्थान, पीने के लिये सुंदर शीतल जल रखना चाहिये, ताम्बूल अर्पण करना चाहिये और राग-रागिनी से रंग कर भक्ति के रसमय पदों का गान करना चाहिये ॥२२॥ देवस्थान लीप-पोत कर स्वच्छ रखना चाहिये, जलपात्रों में जल भरना चाहिये और वस्त्र सुंदर रखना चाहिये ॥२४॥

सब की चिंता करनी चाहिये, आये हुए का सत्कार करना चाहिये, यही सत्य सातवीं भक्ति है ॥२५॥ नाना प्रकार की स्तुति और करुणा से पूर्ण ऐसे वचन बोलना चाहिये कि जिनसे मनुष्यमात्र का चित्त प्रसन्न हो ॥२६॥ यह दास्यभक्ति यथामति बतलायी गयी। जैसे भगवान की वैसे ही सद्गुरु की भी सेवा करनी चाहिये। यदि प्रत्यक्ष न बन पड़े तो मानस-पूजा की ही तरह यह दास्यभक्ति भी करनी चाहिये ॥२७, २८॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ४

समास ८

सख्य भक्ति

तुम्हारे मनो में यथाभाव होगा ।
तथा देव होगा तथा लाभ होगा ।।
अनन्यो की रक्षा करे चापपाणी ।
नुपेक्षे कभी रामदासाभिमानी ।।

- मनोबोध . ३५.

आठवीं भक्ति 'सख्य' का मुख्य लक्षण यह है कि परमात्मा को अपना परममित्र बनाना चाहिये, उसे प्रेम और प्रीति में वश कर लेना चाहिये ।।२॥ परमेश्वर से मित्रता करने का मुख्य उपाय यह है कि उसे जो बातें अच्छी लगती हैं, हम उन्हीं के अनुसार आचरण करें ।।३॥ भक्ति, भाव, भजन, अध्यात्म-निरूपण, भगवत्कथा, भगवद्गुण-कीर्तन और प्रेमी भक्तियों का गान भगवान को अच्छा लगता है ।।४॥ यही सब बातें हमें भी करनी चाहिये, हमें भी यही अच्छा लगना चाहिये; इससे भगवान का और हमारा मन मिल जाएगा; और बस, दोनों की मित्रता, सहज ही हो जाएगी ।।५॥ परमात्मा की मैत्री प्राप्त करने के लिये अपने सारे सुखों को तिलांजलि दे देना चाहिये और, अनन्य भाव से, जीव, प्राण तथा शरीर तक उसे अर्पण कर देना चाहिये ।।६॥ जगदीश्वर से मित्रता करने में यदि अपने इष्टमित्र, बन्धु-बान्धव, परिवारजन, इत्यादि को भी छोड़ना पड़े तो कोई परवाह नहीं - उसे सर्वस्व अर्पण कर देना चाहिये और अंत में प्राण भी उसी के प्रित्यर्थ जाना चाहिये ।।७॥ हृदय से, भगवान में ऐसा प्रेम चाहिये कि हमारा सर्वस्व क्यों न चला जाए; परंतु भगवान से मित्रता न टूटे। भगवान् ही हमारा 'प्राण' है और प्राण की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है - यह परम प्रीति का लक्षण है ।।९, १०॥ ऐसी परम मित्रता होने पर परमेश्वर को भक्त की चिंता लगती है। देखिये न! लाक्षागृह में जलते हुए पांडवों की, विवर द्वारा निकाल कर, उसने कैसी रक्षा की! ।।११॥ मित्ररूप में परमात्मा को अपने पास रखने की कुंजी हमारे ही पास है। जिस प्रकार पोली जगह में हम जैसी आवाज करते हैं वैसी ही प्रतिध्वनि आती है उसी प्रकार, हम यदि परमात्मा पर अनन्य भाव रखते हैं तो

वह भी, उसी समय, प्रसन्न हो जाता है और यदि हम उसकी ओर से मुख मोड़ लेते हैं तो वह भी हमारी ओर से मुख मोड़ लेता है ।।१३, १४॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।। जो जैसी भक्ति करता है वैसा ही परमेश्वर उसके लिये हो जाता है; अतएव इसकी कुंजी हमारे ही पास है ।।१४॥ यदि हमारे मन के अनुकूल कोई बात न हो और इससे ईश्वर के प्रति हमारी भक्ति खो जाये तो इसका भी दोष हमारे ही उपर है ।।१५॥ चातक जिस प्रकार मेघ के प्रति या चकोर चंद्र के प्रति अनन्य भाव रखता है, भगवान के प्रति ऐसी मित्रता रखना चाहिये। विवेक से धैर्य रखना चाहिये और भगवान के प्रति प्रेम कभी नहीं छोड़ना चाहिये ।।१६, १७॥ भगवान को सखा मानना चाहिये। इतना ही नहीं तो, माता, पिता, गण, गोत, विद्या, लक्ष्मी, धन, वित्त, सब कुछ परमात्मा ही को जानना चाहिये ।।१८॥ यह तो सभी कहते हैं कि ईश्वर को छोड़कर हमारे लिये और कोई नहीं है; परंतु उनकी निष्ठा वैसी नहीं होती! ऐसी कपट मैत्री नहीं करनी चाहिये। मित्रता करनी है तो सच्ची ही करनी चाहिये - परमेश्वर को, दृढ़तापूर्वक, हृदय में रखना चाहिये ।।२०॥ अपनी इच्छा पूर्ण न हो तो ईश्वर पर क्रोध करना सख्यभक्ति का लक्षण नहीं है। किंतु ईश्वर को जैसी इच्छा हो वही करना उचित है ।।२१, २२॥ भगवान् की इच्छा के अनुकूल आचरण करना चाहिये और वह जो कुछ करे, वह स्वीकार करना चाहिये, इससे वह सहज ही दया दिखलाता है ।।२२॥ परमात्मा भक्तों का पक्षपाती है, वह पतितों को तारता है और अनाथों का सहायक बनता है ।।२६॥ ईश्वर कृपा का सागर और करुणा का मेघ है, वह भक्तों को कभी नहीं भूलता ।।२८॥ भक्त पर प्रेम करना परमेश्वर ही जानता है, अतएव उससे सख्य करना चाहिये। ये सारे परिवारजन छलिया हैं - ये अंत में काम नहीं आते ।।२९॥ ईश्वर की मित्रता कभी नहीं छूटती - उसके प्रेम में कभी अंतर नहीं पड़ता और शरणागत की वह कभी उपेक्षा नहीं करता ।।३०॥ अतएव ईश्वर से सख्य करना चाहिये उससे अपने सुख दुख की बात कहना चाहिये - यही आठवीं भक्ति का लक्षण है ।।३१॥ शास्त्र में परमात्मा और सद्गुरु दोनों बराबर कहे गये हैं; अतएव परमात्मा के ही समान सद्गुरु से भी मित्रता करनी चाहिये ।।३२॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ४

समास ९

आत्मनिवेदन भक्ति

करो काम निष्काम श्रीरामजी का ।
अरे सर्व में रूप देखो स्वयं का ॥
बनो चित्त निर्द्वन्द्व निःस्वार्थ होओ ।
रमो कीर्तनों में सदा मस्त गाओ ॥

- मनोबोध .७७.

नववीं भक्ति का नाम आत्मनिवेदन है। अब इसे स्पष्ट कर के बतलाते हैं। १॥ आत्मनिवेदन का लक्षण यह है कि स्वयं अपने को परमात्मा के अर्पण करना चाहिये ॥२॥ यह बात (आत्मनिवेदन करना) तत्त्व विवरण करने से मालूम होगी ॥३॥ स्वयं को 'भक्त' कहना और 'विभक्त' रहकर ईश्वर को भजना-यह बात विलक्षण है ॥४॥ लक्षण होकर विलक्षण, ज्ञान होकर अज्ञान और भक्त होकर विभक्त - इसी को कहते हैं ॥५॥ भक्त वही है जो विभक्त न हो और विभक्त वही है जो भक्त न हो इस विरोध-भाव का विचार किये बिना कभी संतोष नहीं मिल सकता ॥ इसलिये विचार करना चाहिये; ईश्वर को पहचानना चाहिये; अन्तःकरण में स्वयं अपने को ढूँढना चाहिये ॥६॥ तत्त्व का विचार करके जब इसका निर्णय किया जाता है कि 'मैं' कौन है, तब स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि 'मैं' जैसा कुछ नहीं है ॥७॥ विवेक से जब यह मालूम हो जाता कि तत्त्व तत्त्वों में मिल जाते हैं तब 'मैं' कहां बचता है? यही आत्मनिवेदन है ॥८॥ यह सब तत्त्वरूप भासमान हैं; विवेक से देखने पर सबका निरसन हो जाता है। प्रकृति का निरसन करने से, अर्थात् उसे अलग कर देने से, आत्मा रह जाता है - वहां 'मैं' कहां से आया? ॥९०॥ एक तो मुख्य परमेश्वर है और दूसरी जगत् के आकार में प्रकृति है - अर्थात् माया और ब्रह्म दो तो ही हैं तीसरा 'मैं' चोर कहां से बीच में ले आये? ॥९१॥

तत्त्व-विचार से देखने पर हम जान पाते हैं कि पिण्ड-ब्रह्माण्ड केवल तत्त्व-रचना है। नाना प्रकार की व्यक्तियां, तत्त्वों से रची हुई, विश्व के आकार में फैली हुई हैं ॥९३॥ साक्षीभाव में तत्त्वों का निरसन हो जाता है और आत्मानुभव में साक्षित्व भी शेष नहीं बचता, अतएव, आदि और अंत में आत्मा ही है, फिर 'मैं' कहां से

आया ॥९४॥ आत्मा एक है, स्वानंदघन है और 'अहं आत्मा' यह वचन है; फिर वहां 'मैं' भिन्नत्व में शेष कहां बचा? ॥९५॥ 'सोहं हंसा' अर्थात् मैं वही केवल आत्मा हूँ, इस वचन का भीतरी अर्थ देखना चाहिये; आत्मा का विचार करने से फिर वहां 'मैं' जैसा कुछ नहीं रह जाता! ॥९६॥ आत्मा निर्गुण निरंजन है, इसके साथ अनन्यता होनी चाहिये। अनन्य का अर्थ है - 'अन्य नहीं', तब वहां 'मैं' अन्य कहां से आया? ॥९७॥ आत्मा अद्वैत है; वहां द्वैत-अद्वैत कुछ नहीं है; अतएव वहां भला 'मैं' पन की कल्पना कहां से रहेगी? ॥९८॥ आत्मा पूर्णता से परिपूर्ण है - वहां गुणागुण कुछ नहीं। उस निखिल निर्गुण में 'मैं' कौन और कहां से आया? ॥९९॥ त्वंपद, तत्पद और असिपद के भेदाभेद का निरसन हो जाने पर अर्थात्, "तत्त्वमसि" (वह तू है), यह महावाक्य सिद्ध हो जाने पर, शेष शुद्ध ब्रह्म रह जाता है, वहां 'मैं' कहां से आया? ॥१००॥

'जीवात्मा' और 'शिवात्मा' इन उपाधियों का निरसन करने पर जान पड़ता है कि पहले यही दो कहां से आये? स्वरूप में दृढबुद्धि होने पर, फिर 'मैं' शेष नहीं रहता ॥१०१॥ 'मैं' मिथ्या है, ईश्वर सत्य है। 'ईश्वर' और 'भक्त' दोनों अनन्य हैं - दोनों एक हैं। इस वचन का अभिप्राय अनुभवी जानते हैं ॥१०२॥ इसी को आत्मनिवेदन कहते हैं - यही ज्ञानियों का समाधान है। पंचभूतों में जैसे आकाश और सब देवताओं में जैसे जगत्पिता परमात्मा श्रेष्ठ है, उसी प्रकार नवों भक्तियों में यही नववीं भक्ति श्रेष्ठ है ॥१०४॥ इसकी (आत्मनिवेदन) की प्राप्ति न हो तो जन्म-मरण नहीं मिटता - यह वचन सिद्ध है, इसमें कोई संदेह नहीं ॥१०५॥ अस्तु! यह नवधा (नौ प्रकार की) भक्ति करने से सायुज्य मुक्ति मिलती है और सायुज्य मुक्ति का कल्पांत में भी नाश नहीं है ॥१०६॥ शेष तीनों मुक्तियों का नाश है; परंतु सायुज्य-मुक्ति अचल है। तीनों लोकों का भी विलय हो जाने पर सायुज्य मुक्ति बनी रहती है ॥१०७॥ वेद, शास्त्र आदि सारे सद्ग्रन्थ कुल चार प्रकार की मुक्ति बताते हैं - उनमें तीन का नाश हो जाता है और चौथी अविनाश रहती है ॥१०८॥ पहली मुक्ति है सालोक्य, दूसरी सामीप्य, तीसरी सारूप्य और चौथी सायुज्य है ॥१०९॥ भगवद्भजन से इन चारों की प्राप्ति हो जाती है ॥११०॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ५

समास १

गुरुनिश्चय

धरो चित्त रे ! संगति सज्जनों की ।
करे शुद्धि बुद्धि महादुर्जनों की ॥
बने भावना श्रेष्ठ सन्मार्ग पाए ।
डरे काल भी भीति से दूर जाए ॥

- मनोबोध . १३५.

हे परम पुरुष, आत्माराम और पूर्णकाम सद्गुरु! आपकी जय हो; जय हो। आपकी महिमा वर्णन नहीं की जा सकती ॥१॥ जो वेद के लिये कठिन है, जो शब्दों में नहीं आ सकती वही अलभ्य “वस्तु” आपके प्रसाद से सत्शिष्य को तत्काल ही मिल जाती है ॥२॥ जो योगियों का मुख्य रहस्य है, जो शंकर का मुख्य विश्राम है; वही ब्रह्म आपके योग से प्राणी स्वयं ही हो जाता है, अर्थात् इस दुस्तर संसार के दुःखों से मुक्त हो जाता है ॥३-४॥

अब, आप ही के प्रसाद से - गुरु शिष्यों के लक्षण कहते हैं। मुमुक्षुओं को चाहिए कि इनके अनुसार सद्गुरु की शरण में जाए ॥५॥ वास्तव में गुरु, सबके लिये, ब्राह्मण ही है। (ब्राह्मण कहलाने के लिये आवश्यक गुण हैं - शम, दम, तप, पवित्रता, क्षमा, सरलता, अनुभवयुक्त ज्ञान तथा आस्तिक्यबुद्धि। गीता - १८.४२) ॥६॥ धर्म-कर्म के लिये ब्राह्मण पूज्य है; परंतु ज्ञान सद्गुरु के बिना नहीं होता। और ब्रह्मज्ञान हुए बिना जन्ममरण का दुःख नहीं मिटता ॥२०॥ सद्गुरु के बिना ज्ञान कभी हो नहीं सकता। और अज्ञानी प्राणी संसार-प्रवाह में बहते चले जाते हैं ॥२१॥ बिना ज्ञान के जो कुछ किया जाता है वह सब जन्म-मरण का कारण बनता है। इसीलिये कहा जाता है कि सद्गुरु के चरण दृढ़तापूर्वक पकड़ना चाहिये ॥२२॥ जिसे परमात्मदर्शन की इच्छा हो उसे सत्संग करना चाहिये; क्योंकि सत्संग के बिना देवाधिदेव (परमात्मा) मिल नहीं सकता ॥२३॥ बेचारे अज्ञानी जन सद्गुरु को छोड़कर नाना प्रकार के साधन करते फिरते हैं; परंतु गुरुकृपा बिना वह परिश्रम व्यर्थ ही चला जाता है ॥२४॥ भिन्न-भिन्न

पुण्यकाल में स्नान, दान, व्रत, उद्यापन साधन करते हैं। आदरपूर्वक हरिकथा, पुराण श्रवण, अध्यात्म-निरूपण करते हैं। स्वच्छता के साथ देवतार्चन, स्नान, संध्या, तिलक, माला, मुद्राएं धारण करते हैं। अनेक प्रकार की सामग्री के साथ पूजा करते हैं। घंटा बजाते हैं; स्तोत्र, स्तवन, स्तुति, आसन, मुद्रा, ध्यान, नमस्कार, प्रदक्षिणा आदि सब करते हैं, सांगोपांग पूजा करते हैं। निष्ठा और नियम के साथ उपवास इत्यादि कर्म, बड़े परिश्रमपूर्वक करते हैं; परंतु वे इन सारे कर्मों का केवल फल ही पाते हैं - मर्म नहीं पाते ॥२५-३१॥ हृदय में फल की आशा रख कर लोग यज्ञादि कर्म करते हैं और अपनी इच्छा से ही पुनर्जन्म का बयाना ले लेते हैं! ॥३२॥ जब तक ज्ञानप्राप्ति नहीं होती, तब तक आवागमन नहीं मिटता। गुरुकृपा के बिना अधोगति और गर्भवास नहीं जाता ॥३५॥ जब तक ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं होता तब तक ध्यान, धारणा, मुद्रा, आसन, भक्ति, भाव, भजन आदि सब व्यर्थ हैं ॥३६॥ जिस प्रकार आंखों में अंजन लगाने से गुप्त निधान दिखाई देता है उसी प्रकार सद्गुरु-वचन से ज्ञान का प्रकाश होता है ॥३८॥ सद्गुरु बिना जन्म निष्फल है, सद्गुरु बिना सब दुःख ही है और सद्गुरु बिना संसार-व्यथा जा नहीं सकती ॥३९॥ सद्गुरु की ही कृपा से ईश्वर प्रगट होता है और अपार संसार-दुःख नाश हो जाते हैं ॥४०॥ प्राचीन काल में जो बड़े-बड़े संत-महंत, मुनीश्वर हो गये उन्हें भी ज्ञान और विज्ञान का विचार सद्गुरु से ही मिला था ॥४१॥ श्री रामचन्द्र और योगेश्वर श्रीकृष्ण भी गुरुभजन में बहुत तत्पर रहते थे। अनेक-सिद्ध-साधु और संतजनों ने गुरुसेवा की है ॥४२॥ सकल सृष्टि के चालक अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी सद्गुरु चरणों की सेवा करते रहते हैं - सद्गुरु के आगे इनका भी महत्त्व नहीं है ॥४३॥ अस्तु। जिसे मोक्ष की चाह हो उसे सद्गुरु की खोज करनी चाहिये, सद्गुरु के बिना मोक्ष मिलना संभव नहीं है ॥४४॥ परंतु सद्गुरु कोई अन्य मामूली गुरुओं की तरह नहीं होते; क्योंकि उनकी कृपा से शुद्ध ज्ञान का प्रकाश होता है ॥४५॥ अगले समास में ऐसे ही सद्गुरु के लक्षण बतलाये जायेंगे ॥४६॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ५

समास २

गुरु लक्षण

न हो गर्व का लेश, होवे विरक्ति ।
क्षमा, शांति की योग की दक्ष मूर्ति ॥
न हो लोभ ना क्षोभ ना दीनता हो ।
गुणों से इन्हीं योगीराजा सजा हो ॥

- मनोबोध . १३४.

जो करामात दिखाते हैं उन्हें भी गुरु कहते हैं; परंतु वे मोक्षदाता गुरु नहीं हैं ॥१॥ सभा-मोहन मंत्र, टोटका-टोना, झाड़-फूंक, नाना प्रकार के असंभव चमत्कार तथा कौतुक बतलाते हैं ॥३॥ साहित्य, संगीत, रागज्ञान, गीत, नृत्य, तान-मान और अनेक वाद्य सिखलाते हैं, ये सभी एक प्रकार के गुरु हैं ॥४॥ जिस जाति का जो व्यापार है वह, उदर भरने के लिये सिखाते हैं; परंतु वे वास्तव में सद्गुरु नहीं हैं ॥६॥ अपने माता-पिता भी यथार्थ में सद्गुरु ही हैं; परंतु जो भवसागर से पार कराता है, वह सद्गुरु दूसरा ही है ॥७॥ गायत्री मंत्र का उच्चार बताने वाला यथार्थ में कुलगुरु है; परंतु जिस ज्ञान के बिना भवसागर पार नहीं हो सकते वह ज्ञान देने वाला सद्गुरु दूसरा ही है ॥८॥ जो ब्रह्मज्ञान का उपदेश करे; अज्ञानांधकार का निरसन करे; जीव और शिव का जो ऐक्य करे, जीवपन और शिवपन के कारण ईश्वर और भक्त में जो भिन्नता आ गई है, उसे जो मिटा दे - अर्थात् परमेश्वर और भक्त का ऐक्य करा दे - वही सद्गुरु है ॥९, १०॥ भव-भयरूपी व्याघ्र पंचविषयरूपी छलांगों भरकर जीवरूपी बछड़े को ईश्वररूपी गौ से छीन लेता है। उस समय जो अपने ज्ञानरूपी खड़ग द्वारा उस व्याघ्र को मारकर बछड़े को बचाता है और उसे गौ से फिर मिला देता है - अर्थात् जीव और शिव का मिलन करा देता है, वही सद्गुरु है ॥११॥ जो प्राणी माया-जाल में पड़कर संसार-दुःख से दुःखी हों उनको जो मुक्त कराता है वह सद्गुरु है ॥१२॥ वासनारूप नदी की बाढ़ में डूबता हुआ जीव भयभीत हो रहा था; वहां जाकर जो उसे पार लगाता है वही सद्गुरु है ॥१३॥ जो ज्ञान देकर गर्भवास के भारी संकट और इच्छा-बंधन की बेड़ियां तुरंत ही काट देता

है, वही सद्गुरु स्वामी है ॥१४॥ जो अपने उपदेश के अप्रतिम प्रभाव से आत्मदर्शन करा देता है वही गुरु अनाथों का रक्षक है ॥१५॥ जीव बेचारा, जो एक देशी है, उसे जो साक्षात् ब्रह्म ही बना देता है और जो उपदेश मात्र से संसार के सारे संकट दूर कर देता है, वह सद्गुरु है ॥१६॥ वेदों के गूढ़ तत्त्व प्रगट करके जो शिष्य के हृदय में अंकित कर देता है, वह सद्गुरु है ॥१७॥ वेदों, शास्त्रों और महानुभावों का अनुभव एक ही है और वही अनुभव सद्गुरुरूप है ॥१८॥ वह संदेह को जड़ से नाश कर देता है और स्वधर्म का, आदरपूर्वक प्रतिपालन करता है, वेद के विरुद्ध कोई बात उसके पास नहीं रहती ॥१९॥

जो मन के पीछे चलता हो - अथवा यूँ कहिये कि, जो मन को जीत नहीं पाया है, वह गुरु नहीं है, भिखारी है। जो शिष्यों को साधन में नहीं लगाते और इन्द्रिय - नियमन नहीं कराते - ऐसे गुरु यदि कौड़ी के तीन मिलें तो भी नहीं करना चाहिये ॥२१॥

जो ज्ञान का बोध कराता है, जो अविद्या का जड़ से नाश करता है, और इन्द्रिय-निग्रह का प्रतिपादन करता हो उसे सद्गुरु जानो ॥२२॥ जो गुरु शुद्ध ब्रह्मज्ञानी होते हुए भी कर्मयोगी, अर्थात् सत्कर्मों का आचरण करने वाला होता है, वही सद्गुरु है और वही शिष्य को परमात्मदर्शन करा सकता है ॥२८॥ विमल ज्ञान, निश्चयात्मक समाधान और स्वरूपस्थिति ये सद्गुरु के मुख्य लक्षण हैं ॥४५॥ इतना ही नहीं; अपितु उसमें प्रबल वैराग्य तथा उदास वृत्ति भी हो और वह विशेषतः स्वधर्माचरण में शुद्ध हो ॥४६॥ जिसके अंतःकरण में तो शुद्ध ब्रह्मज्ञान है, और बाहर से, परमात्मा की भक्ति भी निष्ठापूर्वक करता है, उसके द्वारा अनेक लोगों का उद्धार होता है ॥ ज्ञान, वैराग्य, भजन, स्वधर्म-कर्म, साधन, कथानिरूपण, श्रवण, मनन, नीति, न्याय और मर्यादा इस समस्त सद्गुणों से जो शोभित है, वही सद्गुरु है ॥५२, ५३॥ जिसमें सद्विद्या के अनेक गुण हों; और साथ ही साथ दया अर्थात् कृपालुता हो उसे ही सच्चा गुरु समझना चाहिये ॥७३॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ५

समास ३

शिष्य लक्षण

युवा काल में ही वनश्री लुभावे ।
नहीं कल्पनाजाल झूठा फंसावे ॥
दृढ़ी निश्चयी जो टलेना समानी ।
वही धन्य है राम का दास ज्ञानी ॥

- मनोबोध . ५४.

पिछले समास में सद्गुरु के लक्षण, विस्तारपूर्वक कहे गये। अब सावधान होकर सत्शिष्य के लक्षण सुनिये ॥१॥ सद्गुरु के बिना सत्शिष्य का कोई उपयोग नहीं अथवा यूँ कहिये कि, सत्शिष्य के बिना सद्गुरु का बहुत सा परिश्रम व्यर्थ है ॥२॥ उत्तम शुद्ध भूमि ढूँढ कर उसमें सड़ा हुआ बीज बोने से अथवा उत्तम बीज चट्टान पर पड़ने से जो हाल होता है, वही हाल सत्शिष्य का असत्गुरु के पास और असत्शिष्य का सद्गुरु के पास होता है ॥३॥ दोनों के योग्य हुए बिना काम नहीं चलता, गुरु और शिष्य बेजोड़ होने से परमार्थ नहीं बनता ॥६॥ जहां सद्गुरु और सत्शिष्य की जोड़ी जम जाती है, फिर परिश्रम करना नहीं पड़ता, अनायास दोनों के प्रयास सफल हो जाते हैं ॥७॥ अब भूमि भी अच्छी है, बीज भी उत्तम हैं, परंतु वह बिन वर्षा के जमता नहीं - इसी प्रकार सत्शिष्य और सद्गुरु मिलने पर भी अध्यात्म-निरूपण बिना काम नहीं चलता ॥८॥ खेत बोया भी गया और उगा भी; परंतु रखवाली के बिना हानि होती है - यही हाल साधना के बिना साधकों का होता है ॥९॥ सारांश, जब तक फसल हमारे घर में नहीं आ जाती, तब तक सब कुछ करना पड़ता है अथवा फसल आ जाने पर भी खाली नहीं बैठना चाहिये ॥१०॥ इसलिये साधन, अभ्यास, सद्गुरु, सत्शिष्य, सत्शास्त्र का विचार, सत्कर्म, सद्वासना, सद्पासना, सदाचरण, स्वधर्मनिष्ठा, सत्संग, नित्यनेम-ये सब जब एकत्र होते हैं तभी विमल ज्ञान का प्रकाश होता है; अन्यथा जनसमुदाय में पाखंड, जोर से संचार करता है ॥१२-१४॥ यद्यपि सद्गुरु ही भवसागर से पार लगाता है, फिर भी यहां सत्शिष्य के कुछ लक्षण बताये गये हैं ॥१८॥

सत्शिष्य का मुख्य लक्षण यह है कि, सद्गुरु के वचन में पूर्ण विश्वास रखता हो और अनन्य भाव से उसकी शरण में रहता हो ॥१९॥ इसके पश्चात् श्रीसमर्थ ने सत्शिष्य के जो अनेक लक्षण बताये हैं, उनमें से कुछ प्रमुख लक्षण हैं - पवित्र, सदाचारणी, विरक्त, मुमुक्षु ॥२०॥ निष्ठावन्त, शुचिमन्त, नियमों का पालन करने वाला ॥२१॥ प्रयत्नशील, परम दक्ष, अलक्ष की ओर लक्ष रखने वाला ॥२२॥ अति धीर, अति उदार, परमार्थ विषय में तत्पर ॥२३॥ परोपकारी, निर्मत्सर, अर्थ के भीतर प्रवेश करने वाला ॥२४॥ परम शुद्ध, सावधान ॥२५॥ प्रज्ञावान, प्रेमी, भक्त, मर्यादावंत, नीतिवंत ॥२५॥ युक्तिवान, बुद्धिवान, नित्यानित्य का विचार करने वाला ॥२६॥ धैर्यवान, दृढ़व्रत, कुलवान, पुण्यवान ॥२८॥ सात्त्विक, भजनशील, साधनकर्ता ॥२९॥ विश्वासी, कायाक्लेशी अर्थात् शरीरक्लेश सहन करने में सहनशील ॥३०॥ स्वतंत्र, सर्वप्रिय और सभी प्रकार से सत्पात्र ॥३१॥ सद्विद्यावान, सद्भाववन्त और अन्तःकरण का परमशुद्ध ॥३२॥ शिष्य अविवेकी न हो, वह गर्भसुखी (जन्म से ही सुखों में पला हुआ) न हो; और उसने संसार के दुःखों का ताप सहन किया हो ॥ संसार-दुःखों के कारण ही वैराग्य आता है; और दुःख भोगने पर ही मन में परमार्थ की बात जम जाती है ॥ ऐसा ही शिष्य विश्वास बल से दृढ़तापूर्वक सद्गुरु की शरण लेता है ॥३३-३६॥ सद्गुरु वचनों पर जिसे दृढ़ विश्वास है वही सत्शिष्य है और वही सब से पहले मोक्ष का अधिकारी है ॥३८॥ जो सद्गुरु के वचनों से संतुष्ट होता है वही सायुज्यमुक्ति को प्राप्त करता है, वह संसार दुःख से कभी दुखी नहीं होता ॥३९॥ सद्गुरु स्वर्ग के समस्त देवताओं से श्रेष्ठ हैं। अहो! जिस पर सद्गुरु की कृपा हो चुकी है उसके सामने देवताओं का क्या सामर्थ्य है? उसने ज्ञानबल से वैभव को तिनके के समान तुच्छ बना दिया है ॥४७॥ सद्गुरु-कृपा के ही बल से, अपरोक्ष ज्ञान होकर, माया-सहित ब्रह्मांड तुच्छ मालुम होता है ॥४८॥ सत्शिष्य सद्गुरु की शरण कभी नहीं छोड़ते और सदाचरणी बनकर ईश्वर के समान पवित्र हो जाते हैं ॥५२॥

इसी समास में ओवी क्रमांक ५४ से ९६ तक समर्थ ने पाखंडी शिष्यों पर कठोर शब्दों में प्रहार किये हैं। प्रत्येक साधक ने ये ओवियां अवश्य पढ़नी चाहिये जिससे कि साधना के मार्ग में किन बातों से बचना है, वह स्पष्ट हो सकेगा ॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ५

समास ४

उपदेश लक्षण

यथा बोलता है तथा आचरे जो ।
अनेकत्व में देखता एक है जो ।।
भ्रमों का न ले मार्ग भक्ती सगुणी ।
वही धन्य है राम का दास ज्ञानी ।।

- मनोबोध . ४९.

सद्गुरु और सत्शिष्य का मिलन हो जाने के पश्चात्, सत्शिष्य के मन में आत्मलाभ के लिये होने वाली छटपटाहट शांत होने के लिये, सद्गुरु उसके साथ जो संवाद करते हैं, उसे उपदेश कहते हैं। इसी को मंत्र-दीक्षा भी कहा जाता है। श्रीसमर्थ कहते हैं -

मंत्र के बहुत से लक्षण हैं; परंतु यहां पर उनमें से कुछ बतलाये हैं ॥१॥ बहुत लोग किसी मंत्र की दीक्षा देते हैं; कोई किसी देवता का नाम मात्र बतलाते हैं और कोई ॐंकार का जप कराते हैं ॥२॥ कोई शिव, देवी, विष्णु, महालक्ष्मी, अवधूत, गणेश, सूर्य के मंत्र बतलाते हैं ॥३॥ कोई मत्स्य, कूर्म और वराह के मंत्र बतलाते हैं तो कोई नृसिंह, वामन, भार्गव, रघुनाथ तथा कृष्ण के मंत्र जपने का उपदेश करते हैं ॥४॥ कोई भैरव, मल्लारी, हनुमान, यक्षिणी, नारायण, पांडुरंग और अघोर इत्यादि के मंत्र जपने के लिये कहते हैं ॥५॥ शेष, गरुड़, वायु, बैताल, झोटिंग आदि के बहुत से मंत्र हैं - कहां तक बतलायें ॥६॥ बाला, बगुला, काली, कंकाली और बटुक आदि अनेक शक्तियों के अनेक मंत्र हैं ॥७॥ इसी प्रकार जितने भिन्न भिन्न देवता हैं, उतने ही मंत्र हैं। कोई सहज है; कोई कठिन है, यह सब माया की विचित्र कला है - इसे कौन जान सकता है? ॥८, ९॥ कितने ही मंत्रों से भूत उतर जाते हैं; कितने ही से व्यथा नाश होती है; कितने ही मंत्रों से बुखार, बिच्छू और सांप उतरते हैं ॥११॥ इस तरह भिन्न भिन्न प्रकार के मंत्र कान में सुनाते हैं और जप, ध्यान, पूजा, यंत्र इत्यादि, विधानपूर्वक बतलाते हैं ॥१२॥ कोई

'शिव शिव' बतलाते हैं; तो कोई 'हरि हरि' कहने वाले हैं; तो कोई 'विट्टल विट्टल' का मंत्र देते हैं ॥१३॥ कोई 'कृष्ण कृष्ण', कोई 'विष्णु विष्णु', कोई 'नारायण नारायण', कोई 'अच्युत अच्युत', कोई 'अनंत अनंत', कोई 'दत्त दत्त', कोई 'राम राम'; कोई ॐं ॐं का जप करने को कहते हैं ॥१४-१६॥ कहां तक बतलायें! 'शिव' और शक्ति के अनंत नाम हैं - यही नाम, सब गुरु अपनी अपनी इच्छानुसार जपने को कहते हैं ॥२१॥

इसी प्रकार भिन्न भिन्न साधन मार्ग बतलाये जाते हैं। कोई चार प्रकार की मुद्रा बताते हैं तो कोई नाना प्रकार के आसन सिखाते हैं ॥२२॥ कोई कर्ममार्ग और कोई उपासना मार्ग बतलाते हैं और कोई अष्टांग योग और सप्तचक्र बतलाते हैं ॥२४॥ कोई अनेक प्रकार के तप बतलाते हैं; कोई अजपा मंत्र का उपदेश करते हैं तो कोई तत्त्वज्ञान का ॥२६॥ कोई सगुण और कोई निर्गुण का उपदेश करते हैं और कोई तीर्थाटन करने को कहते हैं ॥२६॥ कोई महावाक्यों का उपदेश कर उनका जप करने के लिये कहते हैं और कोई 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' का मंत्र देते हैं ॥२७॥ कोई शक्ति मार्ग बताते हैं; कोई मुक्ति मार्ग की प्रतिष्ठा करते हैं, कोई अनेक प्रकार के मंत्र (सिद्धियां प्राप्त करने के लिये) बताते हैं ॥२९॥ ऐसे असंख्य मंत्र हैं। मंत्र तो अनेक हैं, परंतु श्रीसमर्थ कहते हैं कि, ज्ञान के बिना सब निरर्थक है। अपने इस कथन के समर्थन में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के वचन उद्धृत करते हुए श्रीसमर्थ कहते हैं -

ज्ञान के समान पवित्र और उत्तम अन्य कुछ नहीं है। इसलिये पहले आत्मज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये ॥३२॥ सब मंत्रों से आत्मज्ञान का मंत्र (गुह्य उपदेश) विशेष उत्तम है ॥३३॥ आत्मज्ञान की महिमा चतुर्मुख ब्रह्मा भी नहीं जानते, फिर बेचारा जीवात्मा प्राणी क्या जाने ॥३४॥ समस्त तीर्थों का स्नान-दान करने का जो फल है उससे करोड़ गुना फल भी ब्रह्मज्ञान की बराबरी नहीं कर सकता ॥३५॥ अतएव, आत्मज्ञान गहन से भी गहन है। यही विषय अब बतलाते हैं, शांत होकर सुनिये ॥३६॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ५

समास ५

बहुधाज्ञान निरूपण

महावाक्य तत्त्वार्थ चर्चा चलाई ।
अरे भीतरी बात ना ध्यान आई ॥
भले नीम की शाख को है बताता ।
उसे छोड़ता, चन्द्र को देख पाता ॥

मनोबोध . १५४.

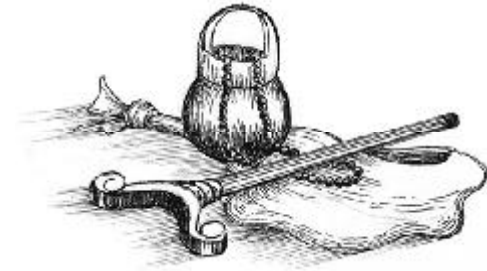
जब तक प्रांजल (सच्चा अथवा विशुद्ध) ज्ञान नहीं है तब तक सब कुछ निष्फल है, क्योंकि ज्ञान के बिना मन की व्याकुलता मिट नहीं सकती ॥१॥ 'ज्ञान' कहते ही भ्रम होने लगता है कि सब कोई कहते होंगे कि - भाई, इसमें क्या रहस्य होगा! इसलिये, अब क्रमशः इस विषय को बतलाते हैं ॥२॥ भूत, भविष्य, वर्तमान (स्पष्ट) मालूम होने को भी ज्ञान कहते हैं, परंतु यह ज्ञान नहीं है ॥३॥ बहुत अधिक विद्यापठन, संगीत, वैद्यकशास्त्र, वेदाध्ययन यह भी ज्ञान नहीं है ॥४॥ अनेक व्यवसायों का ज्ञान, नाना प्रकार की दीक्षाओं का ज्ञान, अनेक प्रकार के नरों के परीक्षाओं का ज्ञान भी ज्ञान नहीं है ॥५॥ बहुत प्रकार के अश्व, गज, श्वापद, पशु-पक्षी इत्यादि नाना प्रकार के जीवों की परीक्षा करना भी ज्ञान नहीं है ॥६॥ नाना प्रकार के यान, वस्त्र और शस्त्रों की परीक्षा करना भी ज्ञान नहीं कहा जा सकता ॥७॥ अनेक प्रकार के धातुओं, सिक्कों और रत्नों की परीक्षा करना भी ज्ञान नहीं है ॥८॥ नाना भांति के पाषाणों, काष्ठों और वाद्यों की परीक्षा वैसे ही अनेक प्रकार के पृथ्वी, जल और अग्निमय पदार्थों की परीक्षा को भी ज्ञान नहीं कहते ॥९॥ नाना प्रकार के रस, बीज, अंकुर, फल, फूल, काष्ठ, की परीक्षा भी ज्ञान नहीं है ॥१०॥ अनेक प्रकार के दर्द, रोग, अनेक प्रकार के मंत्र, यंत्र और बहुत तरह की मूर्तियों की परीक्षा कोई सच्चा ज्ञान नहीं है ॥११॥ अनेक क्षेत्रों (खेतों), गृहों और पात्रों की परीक्षा भी सच्चा ज्ञान नहीं है ॥१२॥ अनेक प्रकार की विद्या,

कला और चातुर्य की परीक्षा भी, सच्चा ज्ञान नहीं है ॥१३॥ नाना प्रकार के मत, भांति भांति के ज्ञान और अनेक वृत्तियों की परीक्षा करना भी सच्चा ज्ञान नहीं है ॥१४॥ सृष्टिज्ञान, भूमिविज्ञान, पदार्थविज्ञान भी सच्चा ज्ञान नहीं है ॥१५॥ परिमित भाषण, हाजिर-जवाबी, आशुकवि होना भी ज्ञान नहीं है ॥१६॥ काव्यकुशलता, संगीत कला, गीत-प्रबंध, नृत्य कला, सभा चातुर्य, वाणीसौन्दर्य, मोहन कला, रम्य और रसमय गायनकला, हास्य, विनोद, कामकला भी सच्चा ज्ञान नहीं है ॥१७॥ चौसठ कलाएं, चौदह विद्याएं और सकल सिद्धियों का ज्ञान भी कोई ज्ञान नहीं है ॥१८॥

यह सब ज्ञान हुआ सा (भास) मालूम पड़ता है, परंतु मुख्य ज्ञान तो भिन्न ही है। वहां प्रकृति (माया) का संसर्ग बिलकुल नहीं है ॥१९॥ दूसरे के मन की बात जान लेना सच्चा ज्ञान जान पड़ता है, परंतु यह आत्मज्ञान का लक्षण नहीं है ॥२०॥ बहुत प्रकार के ज्ञान हैं, जो बतलाए नहीं जा सकते, पर जिससे सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है वह ज्ञान दूसरा ही है ॥२१॥

इस पर शिष्य पूछता है कि, "महाराज! तो फिर वह ज्ञान कौनसा ज्ञान है जिसके द्वारा परम शांति प्राप्त होती है? उसे विस्तारपूर्वक बतलाइये" ॥२२॥ वही शुद्ध ज्ञान अगले समास में बतलाया जाएगा ॥२३॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक ५

समास ६

शुद्धज्ञान निरूपण

सदा मग्न है तत्त्व की चिंतना में ।
फंसे ना कभी दंभ के तर्कटों में ।।
करे निर्मिता का ही संवाद बानी ।
वही धन्य है राम का दास ज्ञानी ।।

मनोबोध . ५२.

शुद्ध ज्ञान यानी 'आत्मज्ञान', और 'आत्मज्ञान' का लक्षण है स्वयं अपने को जानना ।।१॥ मुख्य देवता (परमात्मा) को जानना, सत्यस्वरूप को पहचानना और नित्यानित्य का विचार करना इसका नाम 'ज्ञान' है ।।२॥ जहां इस संपूर्ण प्रकृति का विलय हो जाता है, जहां पंचभौतिक कुछ रहता ही नहीं, जहां द्वैत का जड़ से नाश हो जाता है (अर्थात् जहां एक को छोड़कर और कुछ रहता ही नहीं) इसका नाम ज्ञान है ।।३॥ जो मन और बुद्धि के लिये भी अगोचर है, जहां तर्क की गति नहीं, जो उल्लेख (निर्देश) और परावाणी से भी परे है, उसका नाम ज्ञान है ।।४॥ जहां दृश्यमान कुछ नहीं है, जहां 'अहंब्रह्मास्मि' यह ज्ञान भी अज्ञान है, ऐसा जो शुद्ध और विमल स्वरूपज्ञान है, वही ज्ञान है ।।५॥ 'सब की साक्षी' जो तुरीयावस्था है उसे लोग ज्ञान कहते हैं, परंतु उस अवस्था में भी जो ज्ञान होता है, वह पदार्थज्ञान से भिन्न नहीं है, अतएव वह भी व्यर्थ है ।।६॥ क्योंकि दृश्य पदार्थ को जानना यह पदार्थ ज्ञान है और शुद्ध स्वरूप को जानना स्वरूप ज्ञान कहलाता है ।।७॥ जहां किसी का (भिन्नत्व में) अस्तित्व ही नहीं है वहां 'सर्वसाक्षित्व' - सब का साक्षीपन - कहां से आया? इसलिये तुर्या का ज्ञान भी शुद्ध नहीं मानना चाहिये ।।८॥ 'ज्ञान' अद्वैत को कहते हैं (जहां एक को छोड़कर दूसरा कुछ है ही नहीं) और तुर्यावस्था तो प्रत्यक्ष द्वैतरूपी है - (अर्थात् तुर्या 'सब की साक्षी है' - इसलिये एक तो स्वयं तुर्या हुई और दूसरे वे सब हुए, जिनकी वह साक्षी है) - अतएव तुर्यावस्था का ज्ञान शुद्ध ज्ञान नहीं है - शुद्ध ज्ञान कुछ और ही है ।।९॥ अच्छा, अब शुद्ध ज्ञान के लक्षण सुनिये, "हम शुद्ध स्वरूप ही हैं" - इसका अनुभव होना ही शुद्ध ज्ञान है ।।१०॥ महावाक्य (तत्त्वमसि: तत् + त्वम + असि, वह (ब्रह्म) तू है) का मंत्र अच्छा है

परंतु उसका जप नहीं कहा गया है, इस वाक्य का तो साधक ने चिंतन ही करना चाहिये ।।११॥ यह महावाक्य कुल मंत्रों का सार है, पर उसका विचार ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि उसके जप से अज्ञानान्धकार नहीं मिट सकता ।।१२॥ इस महावाक्य का विवरण करना ही ज्ञान का मुख्य लक्षण है। जो इस चराचर का मूल है और जो निर्मल तथा शुद्धस्वरूप है, उसी का नाम, वेदान्त के अनुसार, 'शुद्ध ज्ञान' है ।।१७॥

प्राचीन काल में इसी ज्ञान से अनेक महापुरुष मुक्त हो चुके हैं ।। व्यास वसिष्ठ, शुक, नारद, जनक आदि महाज्ञानी इसी ज्ञान से तर गये ।।२२, २३॥ वह ज्ञान वेदशास्त्रों का सार है, वह गुरुप्रतीति और आत्मप्रतीति (आत्मानुभव) का विचार है और उसकी प्राप्ति भाविकों को भाग्य के अनुसार होती है ।।२७॥ सकल साधनों का फल वही है, वह संपूर्ण ज्ञानों का शिरोमणि है और उससे संशय समूल नाश हो जाता है ।।३०॥ वह पुराणों से नहीं जाना जाता, वेद उसका वर्णन करते करते थक गये, परंतु श्रीगुरुकृपा से मैं उसका सहज ही निरूपण करता हूं ।।३२॥

हे शिष्य, यहां मर्म की बात है कि - स्वयं तू ही ब्रह्म है - इसमें संदेह अथवा भ्रम नहीं रखना! ।।४५॥ नवधा भक्ति में आत्मनिवेदन नामक जो मुख्य भक्ति है, उसका भी मर्म यही है ।।४६॥ दृश्य पदार्थों के लुप्त होते ही वास्तव में 'मैं' भी नहीं रहता और परब्रह्म तो आदि से ही अद्वैत है ।।४८॥ इस अद्वैत स्थिति में स्थापित हो जाना ही आत्मज्ञान है, इससे परमशान्ति मिलती है और भव-भय छूट जाता है ।।५४॥ जो देह को ही 'मैं' समझता है, वह आत्मघातकी है। देहाभिमान के कारण वह अवश्य ही जन्म-मरण भोगता रहता है ।।५५॥

हे शिष्य! तू चारों देहों से अलग है, तू जन्मकर्म से भिन्न है और संपूर्ण चराचर सृष्टि के भीतर तू ही भरा हुआ है ।।५७॥ हे शिष्य! परमार्थ में दृढीकरण के लिये एकांत में बैठकर स्वरूप में (ब्रह्मस्वरूप या स्वस्वरूप में) विश्रान्ति लेना चाहिये। जब अखंड श्रवण-मनन किया जाता है, तभी समाधान मिलता है और ब्रह्मज्ञान पूर्ण हो जाने पर वैराग्य की प्राप्ति होती है ।।५९॥ अविद्या की नींद अतिशय प्रगाढ़ होती है, उसमें बड़ा भारी भ्रम समा जाता है। श्रवण-मनन के द्वारा उसमें से जो पूर्ण जागृत हो गया, वही सिद्ध है ।।७०॥ अन्य सब बद्ध, मुमुक्षु, साधक कहलाते हैं, उनका वर्णन आगे के समासों में किया जाएगा ।।

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ५

समास ७

बद्ध लक्षण

हुई देह से प्रीति आसक्ति गाढ़ी ।
उसी से गुणातीत की भक्ति छोड़ी ॥
न हो बुद्धि देहात्मिका आत्मिका हो ।
सदा मित्रता सज्जनों से बनी हो ॥

- मनोबोध . १६३.

सृष्टि के संपूर्ण चराचर जीव चार प्रकार के हैं - बद्ध, मुमुक्षु, साधक और सिद्ध। इनके अलावा पांचवां प्रकार और कोई नहीं है। अब, इन चारों के लक्षण एक-एक समास में विस्तारपूर्वक बतलाते हैं ॥१-३॥ सर्वप्रथम बद्ध के लक्षण सुनिये -

जैसे अंधे को, बिना दृष्टि के, दसों दिशाएं शून्याकार जान पड़ती हैं उसी प्रकार, स्वार्थान्धता के कारण, बद्ध को भी, ज्ञानदृष्टि के बिना, सारा संसार सूना समझ पड़ता है ॥६॥ भक्त, ज्ञाता, तपस्वी, योगी, बैरागी, संन्यासी, इत्यादि जिन सत्पुरुषों से यह संसार सधा हुआ है, वे कोई भी बद्ध पुरुष को दृष्टि में नहीं आते ॥७॥ कर्म-अकर्म, धर्म-अधर्म और सुगम परमार्थ-पंथ वह नहीं जानता ॥८॥ सत्शास्त्र, सत्संगति, सत्पात्र और पवित्र सन्मार्ग भी उसे दिखाई नहीं देता ॥९॥ सारासार का विचार, स्वधर्म का आचार और परोपकार या दान-पुण्य नहीं जानता ॥१०॥ बद्ध पुरुष भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, ध्यान, मोक्ष और साधन कुछ नहीं जानता ॥१२॥ वह निश्चयात्मक देव (परमात्मा) को नहीं जानता, संत का विवेक नहीं जानता और माया का कौतुक नहीं समझता ॥१३॥ उसे परमार्थ की पहचान नहीं होती, वह अध्यात्मनिरूपण नहीं जानता और न स्वयं अपने को ही जानता है ॥१४॥ उसे जीव के जन्म का कारण नहीं मालुम होता, वह साधन का फल नहीं जानता और उसे यथार्थ सत्य का ज्ञान नहीं होता ॥१५॥ उसे यह मालुम नहीं होता कि, जिसमें वह स्वयं

बंधा है, वह बंधन कैसा है, उसे मुक्ति का लक्षण मालुम नहीं होता और न उसे विलक्षण वस्तु (ब्रह्म) का ज्ञान होता है ॥१६॥ आत्मज्ञान का न होना बद्ध का मुख्य लक्षण है। वह तीर्थ, व्रत, दान, पुण्य, कुछ नहीं जानता ॥१८॥ उसमें दया, करुणा, विनती, मैत्री, शान्ति, क्षमा आदि गुण नहीं होते ॥१९॥ जिसके पास ज्ञान ही नहीं है उसमें ज्ञान के लक्षण कहां से आयेंगे? जिसमें कुलक्षण ही कुलक्षण भरे हैं, वह बद्ध है ॥२०॥ जिस पुरुष में काम, क्रोध, गर्व, मद, द्वंद्व, खेद, आदि अवगुण अधिकता से वास करते हों, उसे बद्ध जानना चाहिये ॥२२॥ उसमें भ्रष्टाचार, अनाचार, नष्टता, एकंकार, अनीति, अविचार, आदि दुर्गुणों की अधिकता होती है ॥२८॥ कल्पना, कामना, तृष्णा, वासना, ममता, कुभावना, आदि अवगुण उसमें बहुत होते हैं ॥३१॥ जो परमार्थ विषय में अज्ञान हो, प्रपंच का भारी ज्ञान रखता हो और जिसे स्वयं समाधान न हो, उसका नाम बद्ध है ॥३६॥ जिसे सत्संग अच्छा नहीं लगता, जिसको संत-निन्दा से प्रीति है और जिसने देह-बुद्धि की बेड़ियां डाल ली हैं, वह बद्ध है ॥३८॥ वह हाथ में जपमाला लिये रहता है, परंतु प्रत्येक समय कांता का ध्यान करते रहता है और उसके पास सत्संग का अभाव रहता है ॥३९॥ बद्ध पुरुष, व्यर्थ समय न खोते हुए सदा गृहस्थी की ही चिंता में मग्न रहता है ॥४४॥ जागते, स्वप्न में, रात में, दिन में, प्रत्येक समय, उसको विषयों का ऐसा अध्यास लगा रहता है कि जिसके कारण उसे क्षण का भी अवकाश नहीं मिलता ॥४८॥ ये बद्ध के लक्षण ही मुमुक्षु-अवस्था में बदल जाते हैं। अगले समास में वे ही कहे जाएंगे ॥४९॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ५

समास ८

मुमुक्षु लक्षण

अहा घोर संसार निःसार मानो ।
अरे चित्त ! खोजो जरा सत्य जानो ॥
विषैले फलों से महादुःख होगा ।
करो राम का ध्यान, सर्वस्व देगा ॥

- मनोबोध .६६.

संसार सुखों और भोगविषयों में पूर्णरूप से लिप्त बद्ध व्यक्ति का भाग्य अच्छा हो अथवा उसने पूर्वजन्म में कुछ पुण्यकर्म किये हों, तो संसार में निरंकुश स्वैर आचरण करते करते अचानक वह दुःखों से, विपत्तियों से घिर जाता है। संसार के दुःखों से दुःखी होकर, त्रिविध तापों से तप्त होकर और सौभाग्यवश अध्यात्म-निरूपण सुनकर, वह अपने अंतःकरण में पछताने लगता है ॥३३॥ वह कुल प्रपंच (गृहस्थी) से ही ऊब जाता है, उसका मन विषयों से ऊब जाता है और वह कहता है कि, “बस, गृहस्थी के हौसले बहुत पूरे हो चुके ॥४४॥ सारा प्रपंच चला जाएगा, यहां के परिश्रम का कोई फल न होगा, अब कुछ अपना समय सार्थक करूं” ॥५॥ अपने पूर्वजीवन के अनेक दोषों का उसे स्मरण हो आता है, और वे सारे दोष मूर्तरूप होकर उसके सम्मुख आ खड़े हो जाते हैं ॥७॥ वह पछताने लगता है कि,

मेरे मन में तो कभी पुण्य का विचार भी नहीं आया, पाप के पहाड़ जमा हो गये, अब यह दुस्तर संसार कैसे पार होऊँ? ॥९॥ जन्मभर अपने दोषों को छिपाया और भले आदमियों के गुणों पर दोष लगाये! हे ईश्वर, मैंने संत, साधु और सज्जनों की व्यर्थ ही निन्दा की ॥१०॥ मैंने संतों को नहीं पहचाना, भगवान् का अर्चन नहीं किया, और अतिथि अभ्यागतों को भी संतुष्ट नहीं किया ॥१२॥ कभी शरीर को कष्ट नहीं दिया, परोपकार नहीं किया और काम-मद के कारण आचार की रक्षा भी नहीं हो सकी ॥१४॥ अब जीवन सार्थक कैसे हो? मैंने अनेक व्यर्थ दोष कर डाले! विवेक तो मेरे पास कभी आया ही नहीं ॥१६॥ कौन उपाय किया जाए? कैसे परलोक मिले? हा परमात्मन् ! आपको मैं कैसे

प्राप्त करूं? ॥१७॥ मेरे मन में सद्भाव कभी उपजा नहीं, जन्मभर मान और प्रतिष्ठा ही प्राप्त करने में लगा रहा, और कर्म का खटाटोप, ऊपर ऊपर तथा दांभिकता से ही किया ॥१८॥ मन में अभिमान रखकर, मैं सदा ऊपर से गर्वरहित बातें करता रहा और ध्यान करने के बहाने से भीतर ही भीतर धन की चिंता करता रहा ॥२०॥ जो कुछ सत्य देखा उसी का खंडन किया और मिथ्या ही का प्रतिपादन किया, इसी प्रकार, उदर भरने के लिये, मैंने अनेक कपट-कर्म किये! ॥२२॥

कुल मिलाकर कहें, तो ऐसा सच्चा पश्चाताप होकर जो अंतर्बाह्य बदल जाता है, उसको ही परमार्थ ग्रन्थों में मुमुक्षु कहा गया है ॥२३॥ इस प्रकार पश्चाताप कर वह सत्संग के लिये उत्सुक होता है ॥३७॥ वह अनेक तीर्थयात्राएं करता है, शम, दम, आदि साधन करता है, अनेक ग्रंथों का अध्ययन करता है, परंतु इन बातों से उसका समाधान नहीं होता, उसके मन के संदेह दूर नहीं होते। तब वह कहता है कि अब संतों की शरण में जाना चाहिये ॥३८-३९॥ वह देहाभिमान, कुलाभिमान, द्रव्याभिमान और अन्य सारे अभिमान छोड़कर संतचरणों में अनन्य हो जाता है ॥४०॥ वह गृह-स्वार्थ या प्रपंच छोड़कर परमार्थ की राह पर चल पड़ता है और कहता है कि, अब मैं सज्जनों का दास होऊंगा ॥४३॥ उपर्युक्त लक्षणों से युक्त पुरुष को मुमुक्षु कहा जाता है ॥४४॥ यही मुमुक्षु सत्संग से और संतों की कृपा प्राप्त कर साधक बन जाता है जिसके लक्षण अगले समास में बताये गये हैं ॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक ५

समास ९

साधक लक्षण

नहीं जो विनाशी उसे जोड़ लेना ।
कहे दास संदेह को भूल जाना ॥
अरे पूर्ण सार्थक्य आयुष्य का हो ।
सदा मित्रता सज्जनों से बनी हो ॥

- मनोबोध . १६७.

अपने पूर्वजीवन के सारे अवगुणों का त्याग कर जो संतसमागम करता है, वह साधक कहलाता है ॥२॥ जो संतों की शरण जाता है और संतजन जिसे आश्वासन भी देते हैं, उसे शास्त्रों में साधक कहा गया है ॥३॥ संतों से आत्मज्ञान का उपदेश पाकर जिसका संसार-बंधन टूट गया है और जो आत्मज्ञान की दृढ़ता के लिये साधन करता है, उसे साधक कहते हैं ॥४॥ वह अध्यात्म-श्रवण से प्रीति रखता है, अद्वैत निरूपण की ओर रुचि रखता है और सद्ग्रंथों का मनन कर उनके अर्थ का सार निकालता है ॥५॥ सारासार का विचार मन लगाकर सुनता है, और संदेह को मिटा कर दृढ़तापूर्वक आत्मज्ञान का विचार करता है ॥६॥ साधक, अनेक प्रकार के संदेह मिटाने के लिये, सत्संगति करता है, और शास्त्र-अनुभव, गुरु का अनुभव और आत्मानुभव इन तीनों को एक करता है ॥७॥ वह विवेक से देहबुद्धि को रोकता है, आत्म-बुद्धि को दृढ़तापूर्वक धारण करता है, और श्रवण और मनन करता ही रहता है ॥८॥ दृश्य (संसार, प्रकृति, माया) का भान छोड़कर साधक आत्मज्ञान को दृढ़ता से धारण करता है और विवेक से समाधान की प्राप्ति करता है ॥९॥ द्वैत की उपाधि (मायिक सृष्टि) को छोड़कर अद्वैत वस्तु (केवल ब्रह्म) को वह साधक, साधन के द्वारा प्राप्त करता है और एकता की समाधि लगाता है ॥१०॥ अपना ज्ञान जो मलिन हो गया था, उसको वह प्रकाशित करता है और विवेक से भवसागर के पार हो जाता है ॥११॥

कुल मिलाकर संक्षेप में कहें तो देहबुद्धि को दूर हटा कर अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिये सतत् अनुसंधान करना, प्रयत्न करना यह साधक की संपूर्ण साधना का मर्म है। आत्मस्वरूप अदृश्य और अत्यंत सूक्ष्म तो देहसहित संपूर्ण विश्व दृश्यमान

और अत्यंत स्थूल होता है। ये दोनों ही कठिन बातें जो निश्चयपूर्वक, धैर्यपूर्वक पूरी लगन के साथ, सतत् अभ्यास से साध्य कर लेता है, वही साधक कहलाता है। श्रीसमर्थ वर्णन करते हैं -

अपने दृढ़निश्चय के बल से, दृश्य (संसार) का अस्तित्व होने पर भी, उससे बाध्य न होते हुए, वह सदैव स्वरूप में मिलता रहता है ॥१५॥ जहां मन का ही लोप हो जाता है, जहां तर्क ही पंगु हो जाता है - उसी को साधक दृढ़तापूर्वक अनुभव में लाता है ॥२०॥ वह 'मैं-पन' को पीछे छोड़ देता है, स्वयं 'अपने' को दृढ़ता है और तुर्यावस्था को भी पार कर जाता है ॥२६॥ इसके पश्चात् उन्मनी अवस्था के अंत में वह अखंड रीति से स्वयं 'अपने' से मिलता रहता है, अर्थात् अखंड आत्मानुभव प्राप्त करता है ॥२७॥ जिस प्रकार निद्रा छोड़कर जागृत होने पर मनुष्य स्वप्न-भय से छूट जाता है, उसी प्रकार माया को छोड़कर साधक स्वरूप स्थिति को प्राप्त करता है ॥३३॥ ज्ञान से विवेक और विवेक से वैराग्य-विषयक निश्चय, कर वह अवगुणों का संहार करता है ॥४७॥ अधर्म को स्वधर्म से लूट लेता है, कुकर्म को सत्कर्म से हटा देता है और विचार से अविचार को हटा कर उसे निष्कासित कर देता है ॥४८॥ प्रवृत्ति का त्याग करता है, प्रियजनों का संग छोड़ देता है और निवृत्ति पथ से ज्ञानयोग को प्राप्त करता है ॥५१॥ वह साधनमार्ग से अभ्यास का संग करता है, उद्योग को साथ लेकर चलता है और प्रयत्न को अपना अच्छा सहयोगी बनाता है ॥५५॥ अस्तु। साधक पुरुष अध्यात्म-निरूपण का श्रवण कर अवगुणों को छोड़ देता है और उत्तम मार्ग पर आता है ॥५९॥ वह दृढ़तापूर्वक सबसे विरक्त होकर-परमार्थ-मार्ग का साधन करता है ॥६०॥

यहां पर श्रोता द्वारा शंका उपस्थित की गयी है कि,

क्या निस्पृह और विरक्त मनुष्य ही साधक हो सकता है, और क्या सांसारिक मनुष्य त्याग किये बिना साधक नहीं हो सकता? ॥६१॥

श्रीसमर्थ ने अगले समास में सिद्ध पुरुष के लक्षण बताने के पूर्व इस शंका का समाधान किया है।

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ५

समास १०

सिद्ध लक्षण

चला ज्ञान का खड़ग मारो अहंता ।
विदेही बनो भक्ति से जोड़ नाता ॥
विरक्ति भरो निंद्य को छोड़ देना ।
निरासक्त हो सौख्य में मग्न होना ॥

- मनोबोध . १८८.

पिछले समास के अंत में शंका उपस्थित की गयी कि, क्या सांसारिक मनुष्य, त्याग के बिना, साधक नहीं हो सकता? इसका अब समाधान करते हैं ॥१॥ गृहस्थी में रहते हुए ही यदि साधक बनना हो, तो भी सन्मार्ग का स्वीकार और असत् मार्ग का त्याग करना ही चाहिये ॥२॥ क्योंकि कुबुद्धि छोड़े बिना सुबुद्धि नहीं आ सकती। अतएव कुबुद्धि और असन्मार्ग को छोड़ना ही गृहस्थ या संसारी मनुष्य का त्याग है ॥३॥ प्रपंच को बुरा समझ कर, मन से जब विषयों का त्याग किया जाता है, तभी परमार्थ का मार्ग मिलता है ॥४॥ नास्तिकता, संशय और अज्ञान का त्याग धीरे-धीरे होता है ॥५॥ उपर्युक्त भीतरी त्याग सांसारिक और निस्पृह दोनों के लिये आवश्यक है। परंतु निस्पृह के लिये बाह्य त्याग विशेषरूप से कहा गया है ॥६॥ परंतु सांसारिकों में भी कहीं-कहीं कुछ बाह्य त्याग अवश्य होना चाहिये, क्योंकि इस त्याग के बिना नित्यनेम और सद्ग्रंथों का श्रवण नहीं हो सकता ॥७॥ इस प्रकार उपर्युक्त शंका का सहज ही समाधान हो गया अर्थात् यह सिद्ध हुआ कि त्याग के बिना साधक नहीं हो सकता। अब सिद्ध पुरुष के लक्षण सुनिये ॥८॥

सिद्ध यानी साध्य को प्राप्त कर लेना, यशस्वी होना, विजय प्राप्त करना। जिसने अपना ध्येय प्राप्त कर लिया, जिसे संपूर्ण आत्मज्ञान की प्राप्ति हो गयी, जिसका अज्ञान समूल नष्ट हो गया, वह सिद्ध है। साधक की ही परिपक्व अवस्था यानी सिद्ध। परमार्थ मार्ग का यह अंतिम मुकाम है। मानव जीवन में इससे अधिक दिव्य, समृद्ध, फलदायक और आनंदमय अनुभव नहीं है। आत्मसाक्षात्कार, ब्रह्मज्ञान, अपरोक्षानुभूति, ईश्वरदर्शन ऐसे अनेक नामों से इसका वर्णन किया गया है। इस अनुभव में साधक परमात्मस्वरूप को प्राप्त हो जाता है। वहां चित्त चैतन्यरूप बन जाता है, दृष्टा दृष्टत्व में शेष नहीं बचता, किसी भी प्रकार का भेद शेष नहीं रहता, देहबुद्धि पूर्णरूप से विलीन हो जाती है।

समस्त भूतों में एकमात्र आत्मस्वरूप ही ओतप्रोत भरा हुआ है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। मन के सारे संदेह मिट जाते हैं। संपूर्ण दृश्य जगत का नाश होकर केवल ब्रह्म ही शेष रह जाता है। श्रीसमर्थ कहते हैं -

सिद्ध पुरुष स्वयं ब्रह्म बन जाता है, उसका संशय ब्रह्मांड के बाहर चला जाता है और उसका निश्चय अचल हो जाता है ॥१०॥ साधक के मन की संदेहवृत्ति सिद्धावस्था में निवृत्त हो जाती है। अतएव, जिसमें किसी प्रकार का संदेह शेष नहीं है, वह सिद्ध है ॥१२॥ संशय रहित ज्ञान ही सिद्ध का लक्षण है। सिद्ध पुरुष में संशय हो नहीं सकता ॥१३॥ निश्चय के बिना कुछ भी अणुमात्र प्रामाणिक नहीं है - ये सब व्यर्थ ही संदेह के प्रवाह में पड़े हुए हैं ॥२४॥ इसलिये निःसंदेह, संशयरहित ज्ञान और निश्चययुक्त समाधान ही, सिद्ध का लक्षण है ॥२७॥ इस पर श्रोता प्रश्न करता है कि कौन निश्चय किया जाए और निश्चय का मुख्य लक्षण क्या है? ॥२८॥ इस पर श्रीसद्गुरु उत्तर देते हैं-

यह जानना कि मुख्य देव (परमेश्वर) कैसा है, यह ठीक निश्चय है। इसके सिवाय भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की गड़बड़ नहीं मचानी चाहिये ॥२९॥ पहले जिसने इस चराचर को रचा है, उस परमेश्वर को पहचानना चाहिये, फिर यह देखना चाहिये कि "मैं कौन हूँ"? सर्वसंग-परित्याग कर वस्तुरूप (ब्रह्मस्वरूप) होकर रहना चाहिये ॥३२॥ संशय, देहाभिमान के योग से, सत्य समाधान का नाश कर देता है। इसलिये आत्मबुद्धि का निश्चय स्थिर रखना चाहिये ॥३५॥ निश्चय को आत्मबुद्धि होना ही मोक्षश्री की दशा है। अहमात्मा - मैं आत्मा हूँ - यह कभी भूलना ही नहीं चाहिये, परंतु ये सारी बातें सत्संग के बिना समझ में नहीं आती। संतों की शरण में जाने से सारे संशय मिट जाते हैं ॥३८, ३९॥

निःसंदेहता यह सिद्ध का मुख्य लक्षण है। सिद्ध-स्वरूप में देह तो है ही नहीं फिर वहां संदेह कहां से आया? इस कारण जो निःसंदेह है, वही सिद्ध है ॥४०, ४१॥ देहाभिमान के कारण अनेक लक्षणों का अस्तित्व होता है, परंतु जो देहातीत है उसके लक्षण क्या बतलाएं? ॥४२॥ जो चक्षु से दिखाई नहीं पड़ता, उसके लक्षण किस प्रकार कहे जाएं? सिद्ध, जो निर्मल वस्तु (केवल ब्रह्म स्वरूप) है, उसमें लक्षण कहां से जाएं? ॥४३॥ लक्षण यानी केवल गुण और वस्तु (ब्रह्म) तो निर्गुण - वही वस्तुरूप होना सिद्धों का लक्षण है ॥४४॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ९

समास १

आशंका

अरे ज्ञान-अज्ञान से जो परे है ।
जिसे नेति नेति श्रुति मानती है ॥
कहीं दृश्य-अदृश्य साक्षी नहीं है ।
श्रुति भी न आद्यंत को जानती है ॥

- मनोबोध . १९३.

इस समास में श्रीसमर्थ ने प्रश्नोत्तर के रूप में निर्गुण, निराकार, निर्विकल्प, ब्रह्म का वर्णन किया है। वह हम देखेंगे।

निराकार, निराधार और निर्विकल्प का क्या अर्थ है, यह मुझे बताइये ॥१॥ निराकार का अर्थ है कि परब्रह्म का आकार नहीं, निराधार अर्थात् उसे आधार नहीं और निर्विकल्प अर्थात् उस परब्रह्म की कल्पना नहीं की जा सकती ॥२॥ निरामय, निराभास, निरवयव का क्या अर्थ है? ॥३॥ निरामय अर्थात् परब्रह्म विकार-रहित है, निराभास अर्थात् उसका भास नहीं होता और निरवयव अर्थात् उसमें अवयव भी नहीं हैं ॥४॥ निष्प्रपंच, निष्कलंक और निरूपाधि का क्या अर्थ है? ॥५॥ निष्प्रपंच अर्थात् परब्रह्म में प्रपंच नहीं, निष्कलंक अर्थात् उसमें कलंक नहीं और निरूपाधि अर्थात् उसमें उपाधि नहीं है ॥ इसी प्रकार एक एक प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रीसमर्थ ने परब्रह्म का निरूपण किया है। वे कहते हैं -

परब्रह्म निरूपम है अर्थात् उसे कोई उपमा नहीं दी जा सकती। वह निरवलम्ब है अर्थात् उसे अवलम्ब नहीं और वह निरपेक्ष है अर्थात् उसमें किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं है ॥६॥ परब्रह्म निरंजन अर्थात् दोषरहित, विशुद्ध है निरंतर है अर्थात् उसमें किसी प्रकार का अंतर (खंड) नहीं, और निर्गुण अर्थात् गुणरहित है ॥७॥ वह निस्संग अर्थात् संगरहित है, निर्मल अर्थात् मलरहित है और निश्चल अर्थात् अचल है ॥८॥ वह निःशब्द अर्थात् शब्दरहित है, निर्दोष अर्थात् दोष रहित है तथा निवृत्ति

अर्थात् किसी भी प्रकार की वृत्ति से रहित है ॥९॥ परब्रह्म निष्काम अर्थात् किसी भी प्रकार की कामना से रहित है, वह निर्लेप है अर्थात् किसी भी प्रकार के लेप से रहित है तथा निष्कर्म अर्थात् कर्मरहित है ॥१०॥ वह अनाम्य अर्थात् नामरहित, अजन्मा अर्थात् जन्मरहित तथा अप्रत्यक्ष अर्थात् जो प्रत्यक्ष नहीं ऐसा है ॥११॥

वह अगणित अर्थात् जिसे गिना नहीं जा सकता, ऐसा है, अकर्तव्य अर्थात् जिसके लिये कोई कर्तव्य नहीं ऐसा है तथा अक्षय अर्थात् जिसका क्षय नहीं, ऐसा है ॥१२॥ वह अरूप अर्थात् जिसमें रूप नहीं, अलक्ष अर्थात् जिसको लख नहीं सकते - जो 'अलख' और अनंत अर्थात् जिसका अंत नहीं, ऐसा है ॥१३॥ वह परब्रह्म अपार अर्थात् जिसका पार नहीं, अटल अर्थात् जो टल नहीं सकता और अतर्क्य अर्थात् जिसके संबंध में कोई तर्क नहीं किया जा सकता, ऐसा है ॥१४॥ अद्वैत अर्थात् जिसमें द्वैत नहीं, अदृश्य अर्थात् जो दृश्य नहीं और अच्युत अर्थात् जो कभी च्युत नहीं हो सकता, ऐसा वह परब्रह्म है ॥१५॥ वह अछेद्य अर्थात् जिसे छेदा नहीं जा सकता, अदाह्य अर्थात् जिसे जलाया नहीं जा सकता और अक्लेद्य अर्थात् जो घुलाया नहीं जा सकता, ऐसा है ॥१६॥

परब्रह्म उसे कहते हैं जो सबसे परे है। उसके स्वरूप का विचार करने से स्वयं 'हम' वही हैं - यह बात अनुभव से, सद्गुरु की कृपा से पता चल जाती है ॥१७॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक ९

समास १०

आत्मस्थिति निरूपण

उरों में बसे ईश को जान ऐसा ।
अरे विश्व में व्याप्त आकाश जैसा ॥
न आता न जाता सदा ही बसा है ।
बिना ईश के स्थान कोई नहीं है ॥

- मनोबोध . १९५.

देवता की मूर्ति तो मंदिर के भीतर होती है और कौवा मंदिर की चोटी पर जा बैठता है, परंतु इससे क्या वह कौवा देवता से बड़ा हो सकता है? ॥१॥ राजमंदिर में सभा लगी होती है और बंदर उस मंदिर के एक खंभे पर जा बैठता है, परंतु इससे क्या वह बंदर सभा से श्रेष्ठ हो सकता है ॥२॥ ब्राह्मण स्नान के पश्चात् पानी से अलग हो जाता है और बगुला पानी में ही बना रहता है, परंतु उसे ब्राह्मण के समान पवित्र कैसे मान सकते हैं ॥३॥ ब्राह्मणों में कोई नियमपूर्वक रहते हैं, कोई अव्यवस्थित रहते हैं और कुत्ता सदा ध्यानस्थ ही रहता है, परंतु इससे क्या कुत्ता ब्राह्मण की बराबरी कर सकता है ॥४॥ मान लो कोई नीच पुरुष उच्च श्रेणी के वस्त्र पहने हुए है और राजा नंगे बदन बैठा है परंतु चतुर पुरुष उन दोनों को तुरंत पहचान लेगा ॥५॥ सारांश, बाहरी रूप चाहे जितना बनाया जाए, परंतु वह ढोंग ही कहलायेगा। यहां तो मुख्य आत्मनिष्ठा चाहिये ॥६॥ जिसने सांसारिक प्रतिष्ठा तो बहुत प्राप्त कर ली है, परंतु आत्मजागृति नहीं की है - जो परमात्मा को भूला हुआ है - वह आत्मघातकी है ॥७॥ देवों का भजन करने से देवलोक, पितरों को भजने से पितृलोक और भूतों को भजने से भूतलोक मिलता है ॥८॥ जो जिसको भजते हैं वे उस लोक को जाते हैं। निर्गुण को भजने से स्वयं निर्गुण हो जाते हैं ॥९॥ निर्गुण का भजन यह है कि, निर्गुण में अनन्य होकर रहना चाहिये। अनन्य होने से अवश्य धन्यता प्राप्त होती है ॥१०॥ संपूर्ण कर्मों का फल यही है कि, एक परमात्मा को पहचानना चाहिये और यह विचार करना चाहिये कि “मैं कौन हूँ?” ॥११॥ निराकार परमात्मा का अनुभव करने से देहाभिमान नहीं रहता और यह निश्चय हो जाता है

कि ‘मैं वही हूँ’ ॥१४॥ उक्त दशा आ जाने पर, संदेह के लिये स्थान नहीं रहता, परमात्मा में अनन्यता आ जाती है और देहभावना का पता नहीं लगता ॥१५॥ उस अवस्था में सिद्धांत और साधन केवल भ्रममात्र रह जाते हैं। मुक्त के लिये, साधन इत्यादि के बंधन की क्या आवश्यकता है ॥१६॥ क्योंकि साधन के द्वारा जो कुछ साध्य करना है वह तो वह (मुक्त) स्वयं ही है। अब साधक बनने की आवश्यकता नहीं रही ॥१७॥ जो कुम्हार राजा हो गया वह अब गधे क्यों रखे? कुम्हारपन की उठापटक से अब उसे क्या प्रयोजन है? ॥१८॥ इसी प्रकार साध्य वस्तु प्राप्त हो जाने पर, संपूर्ण वृत्ति भावना और साधन-प्रयत्न नहीं रहते ॥१९॥

देह तो पंचभूतों की बनी हुई है और जीव ब्रह्म का अंश है - वह भी परमात्मा में लीन हो सकता है ॥२०॥ अतएव, ‘मैं पन’ यह बीच में व्यर्थ ही आ गया है। वास्तव में विचार करने पर यह कुछ नहीं है। पंच-महाभूतों का निरसन हो जाने पर निखिल आत्मा रह जाती है ॥२१॥ आत्मा आत्मपन से है, जीव जीवपन से है, और माया मायापन से विस्तारित है ॥२२॥ इस प्रकार सब कुछ है, ‘मैं’ ऐसा भी कोई है। इन सब की खोज करके जो देखता है वही ज्ञानी है। ॥२३॥ जो सब की खोज करना जानता है, पर ‘स्वयं’ को देखना नहीं जानता उस ज्ञानी की वृत्ति एकदेशीय रहती है - व्यापक नहीं होती ॥२४॥ प्रकृति का निरसन करने पर अंत में यदि कुछ टिक सकता है तो वह केवल निर्गुण है, और विचार करने पर वही ‘हम’ है। यह परमार्थ की बड़ी भारी पहचान है ॥२५॥ उस अवस्था में यह विवेक नहीं है कि, ‘फल’ अलग हो और ‘हम’ अलग हों। वहां ‘फल’ और ‘हम’ एक ही हो जाते हैं ॥२६॥ मान लो कि, कोई भिखारी राजा हो गया, और उसे यह अनुभव भी हो रहा है कि, मैं राजा हूँ। अब वह भीख क्यों मांगे? ॥२७॥ वेद, शास्त्र और पुराण जिसका वर्णन करते हैं तथा अनेक सिद्ध और साधु जिसके लिये नाना प्रकार के साधनों और निरूपणों का परिश्रम करते हैं, वह ब्रह्मरूप जब सारासार के विचार से, स्वयं ही हो जाता है - तब फिर वहां करने और न करने इत्यादि का कुछ विचार नहीं रहता ॥२८॥ ३१॥ यही आत्मस्थिति है।

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ११

समास ३

सांसारिक उपदेश

तजो चित्त, संकल्प जो पापकारी ।
धरो सत्यसंकल्प जो लाभकारी ॥
न हो कल्पना भोग के वासना की ।
न हो विकृता धारणा पातकों की ॥

- मनोबोध .५.

दासबोध का उत्तरार्द्ध कहे जाने वाले दशक ९ से २० के विभिन्न समासों में श्रीसमर्थ ने समाज के, राष्ट्र के जीवन को उन्नत बनाने के लिये आवश्यक ऐसे अनेक विषयों की चर्चा की है। समाज में परिवर्तन लाना हो तो व्यक्ति में परिवर्तन लाना होगा और किसी भी समाज का मुख्य भार गृहस्थाश्रम में रहकर जीवनयापन करने वाले व्यक्तियों पर ही होता है। किसी भी व्यक्ति के विकास का आरंभ एक अनुशासित, आदर्श दिनचर्या के साथ होता है। उसके जीवन में प्रपंच और परमार्थ का सुंदर मिलाप हुआ दिखाई देना चाहिये। इसी कारण इस समास में श्रीसमर्थ ने किसी भी सर्वसाधारण सांसारिक व्यक्ति के लिये आदर्श दिनचर्या बतायी है। वे कहते हैं -

मनुष्य का शरीर बहुत जन्मों के बाद मिलता है, इसलिये, इसे पाकर, नीति-न्याय के साथ सत्य आचरण करना चाहिये ॥१॥ प्रपंच (सांसारिक कार्य) नियमपूर्वक करना चाहिये और उसके साथ ही साथ परमार्थ का भी विचार करना चाहिये। इससे इहलोक - परलोक दोनों में सुख मिलता है ॥२॥ सौ वर्ष की आयु नियत की गयी है, जिसमें से बाल्यावस्था अज्ञान में और युवावस्था विषयभोगों में समाप्त हो जाती है ॥३॥ वृद्धावस्था में नाना रोग और कर्मभोग भोगने पड़ते हैं। अब भगवान् का भजन कब करें? ॥४॥ घर में तो आग लगी हुई है और घर का मालिक सो रहा है - ऐसे आत्महत्यारे को कौन भला कहेगा? ॥७॥ पुण्यमार्ग सारा डूबा हुआ है, पापसंग्रह बहुत हो चुका है और यमयातना का धक्का कठिन है ॥८॥ इसलिये अब ऐसा नहीं करना चाहिये, बहुत संभलकर चलना चाहिये, इहलोक और परलोक दोनों को साधना चाहिये ॥९॥ आलस से उदासीनता

और दरिद्रता आती है, प्रयत्न निष्फल जाता है और दुर्भाग्य प्रगट होता है ॥१२॥ अस्तु! अब प्रयत्न कौनसा करना है, वह सावधान होकर सुनें ॥१४॥

प्रातःकाल जल्दी जगकर कुछ उत्तम वचन याद करना चाहिये और यथाशक्ति परमात्मा का स्मरण करना चाहिये ॥१५॥ मुखमार्जन, प्रातःस्नान, संध्या, तर्पण, देवतार्चन करके अग्निपूजन और उपासना सांगोपांग करनी चाहिये ॥१६॥ इसके पश्चात् कुछ जलपान कर गृहकार्य में लग जाना चाहिये और अपने मधुर भाषण से सब को प्रसन्न रखना चाहिये ॥१७॥ अपना अपना व्यवसाय अथवा नौकरी मनःपूर्वक और एकाग्रता से करना चाहिये। दुश्चित्त रहने से दुष्ट लोग धोखा दे जाते हैं ॥१८॥ भोजन के बाद कुछ सद्ग्रंथों का वाचन करना चाहिये, चर्चा करनी चाहिये या एकांत में जाकर नाना प्रकार के ग्रंथों का मनन करना चाहिये ॥२२॥

वर्तमान काल में हमारी जीवन शैली में काफी परिवर्तन हो गया होने के कारण यह दिनचर्या जैसी की तैसी नहीं अपनायी जा सकती। परंतु इसमें बताये गये अनेक सूत्र सर्वकालीन हैं। श्रीसमर्थ आगे कहते हैं -

अब भाग्यवान के लक्षण सुनिये - भाग्यवान मनुष्य अपना क्षणभर का भी समय व्यर्थ नहीं खोता और अपना सांसारिक कार्य पूर्ण दक्षता से करता है ॥२४॥ पहले कुछ कमाता है, तब खाता है, फंसे हुए लोगों को उबारता है और शरीर को किसी न किसी अच्छे काम में लगाता है ॥२४॥ कुछ धर्म-चर्चा, पुराण, हरिकथा, अध्यात्म-निरूपण आदि करता है और प्रपंच+परमार्थ का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देता ॥२६॥ ऐसा जो सब प्रकार से सावधान है, उसे दुःख कैसे हो सकता है? उसका अभिमान विवेक से मिट जाता है ॥२७॥ यह समझकर चलना चाहिये कि जो कुछ है वह सब ईश्वर का है। इस प्रकार का भाव रखने से उद्वेग का समूल नाश हो जाता है ॥२८॥ कर्म, उपासना और ज्ञान से समाधान की प्राप्ति होती है। इसलिये परमार्थ के साधनों का श्रवण करना चाहिये। अर्थात् हमारे जीवन में कर्म, भक्ति और ज्ञान इनका मिलाप होना चाहिये। यह होने से मनुष्य को आत्मसाक्षात्कार का लाभ होकर संपूर्ण समाधान प्राप्त होता है और वह टिका रहता है ॥३०॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ११

समास ५

राजकारण (राजनीति) निरूपण

अरे जीव तू कृत्य ऐसे करे जा ।
मरेगा तभी कीर्ति द्वारा रहे जा ॥
घिसो या जलो चंदनी काष्ठ जैसे ।
भरो सज्जनों के मनो को सुखों से ॥
- मनोबोध .८.

श्रीसमर्थ कहते हैं -

कर्म किया हुआ ही करना चाहिये, ध्यान धरा हुआ ही धरना चाहिये और विवरण किये हुए निरूपण का ही फिर से विवरण करना चाहिये ॥१॥ (मैं वही कर रहा हूँ) इसके पीछे उद्देश्य मात्र इतना है कि, समुदाय अर्थात् समाज में अनन्यता रहे और अन्य लोगों को भी उसके विषय में भक्ति उत्पन्न हो ॥३॥

हरिकथा और अध्यात्म निरूपण मुख्य है, इसके बाद राजनीति का विषय है, और फिर तीसरा काम सभी दृष्टि से सावधान रहना है ॥४॥ इसके बाद अत्यंत साक्षेप अर्थात् प्रयत्न, उपक्रम करना चौथा कर्तव्य है! अनेक प्रकार के आक्षेपों को दूर करना चाहिये तथा छोटे-बड़े अपराधों को भी क्षमा करते जाना चाहिये ॥५॥ दूसरे के हृदय की बात जाननी चाहिये, सदैव उदासीनता (निष्पक्षता) रहनी चाहिये और नीति-न्याय में अंतर नहीं पड़ने देना चाहिये ॥६॥ चतुरता से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहिये और यथाशक्ति 'प्रपंच' को भी संभालना चाहिये ॥७॥ व्यवसाय को व्यापक करना चाहिये, परंतु उसकी उपाधि में फंसना नहीं चाहिये ॥९॥ दूसरों के दोष छिपाने चाहिये, सदा किसी के अवगुण बताते नहीं रहना चाहिये और दुर्जनों को अपने पंजे में लाकर, उनके साथ भलाई करके, फिर छोड़ देना चाहिये ॥१०॥ किसी बात पर बहुत हठ नहीं करना चाहिये और जो कार्य न होता हो उसे अपने दीर्घ प्रयत्न से सिद्ध करना चाहिये ॥११॥

समुदाय में फूट न पड़ने देना चाहिये - कोई संकट का प्रसंग आ पड़े तो उसे संभालना चाहिये, बहुत वाद-विवाद किसी से करना नहीं चाहिये ॥१२॥ दूसरे का अभिष्ट जानना चाहिये, बहुतों का बहुत सहना चाहिये और न सहा जाये तो वहां नहीं रहना चाहिये ॥१३॥ अनेक गद्य-पद्यमय वचन याद रखना चाहिये, विचार पास ही रखना चाहिये और सदा-सर्वदा परोपकार में तत्पर रहना चाहिये ॥१५॥ अपने में शांति लाकर औरों में शांति स्थापित करना चाहिये, अपना हठ छोड़कर दूसरे का हठ छोड़ना चाहिये और स्वयं कार्य कर अन्यो से कार्य करवाना चाहिये ॥१६॥ यदि किसी का अपाय करना हो तो उसे पहले ही कहना नहीं चाहिये, किंतु उसे परस्पर ही उसका अनुभव करा देना चाहिये ॥१७॥ जो बहुतों की नहीं सुनता उसे बहुत लोग नहीं मिलते, परंतु बहुत सहने से भी अपना महत्व नहीं रहता ॥१८॥ राजनीतिक दांव-पेंच बहुत करने चाहिये, पर सब गुप्त रखना चाहिये और दूसरों को कष्ट पहुंचाने की इच्छा नहीं रखनी चाहिये ॥ लोगों को परख लेना चाहिये और राजनीति द्वारा उनका अभिमान गलित कर देना चाहिए और फिर किसी दूसरे ही सूत्र से उन्हें फिर मिला लेना चाहिये ॥२०॥ कच्चे आदमी को दूर रखना चाहिये, बदमाश से बात ही नहीं करनी चाहिये और वह यदि सामने आ भी जाये तो बच कर निकल जाना चाहिये ॥२१॥ स्थिर चित्त हो तो राजकारण भली भांति समझ में आता है ॥२२॥ डरने वाले को दिलासा देना चाहिये और सिर उठाने वाले को ललकारना चाहिये। इस प्रकार राजनीति के अनेक सूत्र हैं जो सभी बताये नहीं जा सकते ॥२३॥ किसी को तो सहायता करना और किसी को देख भी न सकना यह चातुर्य का लक्षण नहीं है ॥२५॥ न्याय की बात जो मानता नहीं और हित की बात जिसकी समझ में आती नहीं उसका त्याग ही कर देने के अतिरिक्त, अन्य उपाय नहीं है ॥२६॥ श्रोताओं के मन के अनुसार यह विषय बतलाया गया। न्यूनाधिक के लिये क्षमा करें ॥२७॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ११

समास ६

महंत लक्षण

करो स्नान संध्या धरो एकनिष्ठा ।
विचारांकुशों से संभालो प्रतिष्ठा ॥
दया सर्वभूतार्थ जो पालता है ।
वहां भक्ति की शांति की संपदा है ॥

- मनोबोध . १०६.

समर्थ संप्रदाय यह प्रचारकों का संप्रदाय है। इन प्रचारकों के लिये समर्थ ने 'महंत' इस अतिशय सुंदर शब्द का प्रयोग किया है। संन्यस्त वृत्ति अपना कर आध्यात्मिक जीवन जीना यह ऐसे महंत का मुख्य लक्षण है। परंतु समर्थ का महंत केवल भजन-कीर्तन में निमग्न होकर रह जाने वाला व्यक्ति नहीं है। अध्यात्म उसके जीवन का अधिष्ठान है, परंतु साथ ही साथ वह अपने आसपास के समाज से सतत् संपर्क रखकर, परिस्थिति को समझकर, संपूर्ण समाज को राष्ट्र कार्य के लिये प्रेरित करने वाला सामाजिक कार्यकर्ता भी है। इस छोटे से समास में श्रीसमर्थ ने ऐसे ही महंत के लक्षण बताये हैं -

शुद्ध और सुंदर लिखना चाहिये, लिखकर शुद्ध रीति से शुद्ध करना चाहिये, और शुद्ध करके शुद्ध रीति से पढ़ना चाहिये, भूल नहीं करनी चाहिये ॥१॥ बिगड़े हुए अक्षर संभालना चाहिये, विषय को दृढ़तापूर्वक मन में रखकर सरस कथाओं का वर्णन करना चाहिये ॥२॥ महंत के पास हरिकथा, अध्यात्म-निरूपण, निश्चयात्मक राजकारण अर्थात् राजनीति और व्यवहारिक ज्ञान ये सभी बातें होनी चाहिये ॥४॥ महंत के लिये आवश्यक गुण यह है कि वह पूछना जानता हो, बतलाना जानता हो, अनेक प्रकार के अर्थ करना जानता हो और सबका समाधान करना जानता हो ॥५॥ महंत को पते की बात पहले मालुम हो जाती हो, वह सावधानी के साथ अकाट्य तर्क करने में सक्षम हो और वह सब जानकर यथायोग्य चुनाव करता हो ॥६॥ इस प्रकार जो सब जानता हो वही

बुद्धिमान महंत है। इसके अतिरिक्त सब यों ही हैं ॥७॥ महंत पुरुष को ताल का अवसर, तान-मान, प्रबंध, कविता, सुभाषित-श्लोक, इत्यादि अनेक सभाचातुर्य की बातें मालुम होती हैं ॥८॥ वह एकांत-विचार में तत्पर रहता है, अनेक गद्यपद्यमय वचन याद करता है अथवा किसी गहन ग्रन्थ का मार्मिक अर्थ ढूँढता रहता है ॥९॥ इस प्रकार जो पहले स्वयं सीखकर फिर अन्यो को सिखाता है वही श्रेष्ठ (महंत) की पदवी पाता है। वह अपने विवेक के बल से फंसे लोगों को उबारता है ॥१०॥ महंत का लिखना, पढ़ना, बोलना, चलना सब कुछ सुंदर होता है। वह भक्ति, ज्ञान, वैराग्य सभी में दक्ष होता है ॥११॥ प्रयत्न करना उसे बहुत अच्छा लगता है, नाना प्रसंगों में वह साहस के साथ प्रवेश करता है, आगे बढ़ता है, कभी पीछे नहीं हटता ॥१२॥ वह संकट में निर्वाह करना जानता है, उपाधि में मिलना जानता है, परंतु उससे स्वयं को अलिप्त रखना भी जानता है ॥१३॥ वह रहता तो सब जगह है, पर ढूँढने पर कहीं नहीं मिलता! वह अंतरात्मा की तरह सब जगह रह कर भी गुप्त रहता है ॥१४॥ ऐसा तो कुछ नहीं है जिसमें अंतरात्मा न हो, परंतु देखने से वह दिखाई नहीं देता, और न दिखते हुए ही प्राणिमात्र का व्यापार चला रहा है! ॥१५॥ बस, इसी तरह महंत भी नाना प्रकार से लोगों को चतुर बनाया करता है। छोटे-बड़े सब प्रकार के लोगों में अनेक विद्याओं का प्रचार किया करता है ॥१६॥ जो अपने ही प्रयत्न से दक्ष बनता है, वह स्वाभाविक ही प्रयत्न का अवलम्ब करता है और यही सच्चे महंत का लक्षण है ॥१७॥ वह नीति-न्याय की रक्षा करना जानता है। अन्याय न स्वयं करता है, न किसी से कराता है और कठिन प्रसंग आ पड़ने पर उपाय करना जानता है ॥१८॥ ऐसी (उपर्युक्त) धारणा-शक्ति का जो पुरुष होता है वही अनेक लोगों को आधार बनता है। 'रामदास' कहते हैं कि ऐसे ही महंत के गुण ग्रहण करना चाहिये ॥१९॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ११

समास ९

उपदेश निरूपण

सदा सर्वदा पास ठाड़े तुम्हारे ।
जरा देखते धैर्य हैं ईश प्यारे ॥
सुखानंद आनंद वैवल्यदानी ।
नुपेक्षे कभी रामदासाभिमानी ॥

- मनोबोध . ३६.

प्रथमतः मनुष्य को विधिपूर्वक कर्म करना चाहिये। इसमें यदि गड़बड़ हो जाती है तो दोष लगता है ॥१॥ इसलिये कर्म का आरंभ करना चाहिये। जितना कुछ ठीक बन पड़े उतना अच्छा है और यदि कुछ न्यून रह जाए तो वहां हरिस्मरण करना चाहिये ॥२॥ केवल स्मरण ही नहीं करना चाहिये, किंतु यह विचार भी करना चाहिये कि, वह हरि कैसा है। संध्या के पूर्व उस जगदीश का चौबीस नामों से स्मरण करना चाहिये ॥३॥ वह चौबीसनामी, सहस्रनामी, अनन्तनामी और अनामी-कैसा है, इसे विवेक से अंतःकरण में जानना चाहिये ॥४॥ लोग अनेक देवताओं के मूर्तियों की प्रेमपूर्वक पूजा करते हैं, परंतु वे मूर्तियां जिसकी हैं वह परमात्मा कैसा है, यह भी तो पहचानना चाहिये! पहचान कर के फिर भजन करना चाहिये, तभी इस भ्रमसागर-भवसागर का पार मिल सकता है ॥५-८॥ अवतारी पुरुष तो निजधाम को चले जाते हैं, परंतु उनकी मूर्तियों के द्वारा वह पूजा अंतरात्मा को प्राप्त होती है ॥९॥ देहरूपी नगरी में जो ईश रहता है उसे पुरुष कहते हैं और संपूर्ण जगत् में जो व्याप्त है उसे जगदीश कहते हैं ॥१२॥ संपूर्ण संसार के शरीरों को चेतना ही चलाती है और इसी चेतना को अंतःकरण अर्थात् विष्णु जानना चाहिये ॥१३॥ वह विष्णु संपूर्ण जगत् के अंतःकरण में है और वही हमारे अंतःकरण में भी है। चतुर पुरुष उसी अंतरात्मा को कर्ता-भोक्ता जानें ॥१४॥ वही सुनता, देखता, सूंघता और चखता है। बुद्धि से विचार करके वही सब कुछ

पहचानता है और अपना-पराया भी वही जानता है ॥१५॥ वास्तव में संपूर्ण जगत् का अंतरात्मा वह एक ही है, परंतु शारीरिक मोह बीच में आ पड़ा है, शरीर ही के योग से वह भिन्न अभिमान धारण करता है ॥१६॥ वही जन्म लेता है, बढ़ता है, मरता है, मारता है, और जिस प्रकार समुद्र में लहरों पर लहरें उठती जाती हैं, उसी प्रकार इस अंतरात्मा के योग से त्रैलोक्य होता जाता है ॥१७॥ तीनों लोकों को चलाने वाला वह एक ही है, इसीलिये उसे त्रैलोक्यनायक कहते हैं - यह अनुभव की बात प्रत्यक्ष देख लेना चाहिये ॥१८॥

ऐसा अंतरात्मा कहा है, परंतु इसकी भी गणना तत्त्वों में ही है। इसके बाद महावाक्य का विचार करना चाहिये ॥१९॥ प्रथम अपने देह के अंतरात्मा को देखना चाहिये, फिर उसी को संपूर्ण जगत् में व्यापक जानना चाहिये, इसके बाद परब्रह्म का विचार आता है ॥२०॥ परब्रह्म का विचार करने से सारासार का निर्णय हो जाता है। यह निश्चित है कि, चंचल का नाश होगा ही ॥२१॥ निरंजन 'वस्तु' उत्पत्ति, स्थिति और संहार से परे है ॥२२॥ जब आठों देहों का, तथा नाम-रूप आदि का विवेक के द्वारा निरसन हो जाता है तब निरंजन विमल ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥२३॥ विचार ही से अनन्य होना चाहिये, देखने वाले के बिना, दृष्टापन के बिना - अनुभव (प्रत्यय) आना चाहिये, परंतु (प्रत्यय आना) यह भी वृत्ति है। इस वृत्ति की भी निवृत्ति होनी चाहिये। अच्छी तरह विचार करो ॥२४॥ बस, इतने पर 'वाच्यांश' छूट जाता है, 'लक्ष्यांश' भी विवेक से देख कर छोड़ दिया जाता है तथा लक्ष्यांश के साथ ही वृत्ति-भावना भी चली जाती है ॥२५॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक ११

समास १०

निस्पृह - आचरण

जनों के हितों की सदा बात भावे ।
जनों के हितों की सदा खोज लेवे ॥
सभी का हितैषी, न पाखंडधारी ।
तजो वाद, संवाद है लाभकारी ॥

- मनोबोध . १११.

श्रीसमर्थ का एक अतिशय प्रिय शब्द है - निस्पृह अर्थात् अनासक्त। दशक ११ समास-६ में जिस महंत का वर्णन किया गया, उसके लिये निस्पृह होना यह तो परम आवश्यक गुण है। इसी कारण इस समास में श्रीसमर्थ ने श्रेष्ठ महंत के निस्पृह आचरण का वर्णन किया है। श्रीसमर्थ कहते हैं -

मूर्ख एकदेशीय (संकुचित विचारवाला) होता है, और चतुर, जिस प्रकार अंतरात्मा सर्वव्यापक होता है उसी प्रकार, सर्वत्र होता है ॥१॥ महंत भी वही अंतरात्मा है, वह संकुचित विचार वाला कैसे हो सकता है? वह तो व्यापक, सर्वज्ञ और विख्यात योगी होता है ॥२॥ वास्तव में कर्ता और भोक्ता वही है, भूमंडल में सब सत्ता उसी की है। उसके बिना उसे देखने वाला ज्ञाता और कौन हो सकता है? ॥३॥ ऐसा ही महंत होना चाहिये - उसे सब सार ढूँढ लेना चाहिये और कोई उसकी खोज करे तो वह एकाएक पकड़ में नहीं आना चाहिये ॥४॥ सच्चा निस्पृह महंत कीर्तिरूप से तो जगत में बहुत विख्यात होता है, परंतु वह किसी एक वेष में दिखाई नहीं देता ॥५॥ उसकी अटल कीर्ति प्रत्यक्ष संसार में छाई रहती है, पर वह स्वयं लोगों को मालुम नहीं होता, लोग जब उसे ढूँढते हैं तो उसका पता नहीं चलता ॥६॥ वेष की सुंदरता को वह दूषण समझता है और कीर्ति को भूषण समझता है, तथा अखंडरूप से उसके मन में विचार-स्फूर्तियां उठती रहती हैं ॥७॥ वह सदा-सर्वदा नित्य-नूतन परिचय करता रहता है। लोग उसके मन की थाह पाना चाहते हैं, पर उसकी इच्छा जान नहीं पाते ॥८॥ वह पूरा पूरा किसी की ओर देखता नहीं, पूरा पूरा किसी से बोलता नहीं, पूरा पूरा एक जगह रहता नहीं - उठकर चल देता है ॥९॥ जहां जाना है वह जगह बतलाता नहीं और जहां के लिये बतलाता है, वहां जाता नहीं - सारांश, अपनी दशा किसी के अनुमान में आने नहीं देता ॥१०॥ लोग उसके

साथ जो करना चाहते हैं उससे वह बचकर निकल जाता है, लोग उसके विषय में जो भावना रखते हैं उसे वह झूठ बना देता है और उसके विषय में जो तर्क करते हैं उसे वह निष्फल बना देता है ॥११॥ लोग उसके दर्शन करना चाहते हैं; उसको गरज नहीं। लोग सेवा में हाजिर हैं; उसकी इच्छा नहीं ॥१२॥ इस प्रकार वह योगेश्वर (महंत, निस्पृह) कल्पना में नहीं आता, तर्क उसके सामने नहीं चलता और कदापि उसकी भावना नहीं की जा सकती ॥१३॥ इस प्रकार उसका मन नहीं मिलता, उसका शरीर एक जगह नहीं रहता, और एक क्षणभर भी वह 'कथा-कीर्तन' नहीं भूलता ॥१४॥ लोग उसके विषय में जो संकल्प विकल्प करते हैं, वे सब निष्फल हो जाते हैं। वह योगेश्वर, लोगों को, स्वयं उनकी ही वृत्ति से, लजा देता है ॥१५॥

जब बहुत लोग परीक्षा कर लें - जब बहुतों के मन में स्थान पा जाएं - तब कहीं जानना चाहिये कि, अब हमारा बड़ा काम हो गया ॥१६॥ अखंड रीति से एकांत का सेवन करना चाहिये, अभ्यास ही करते रहना चाहिये, तथा अन्य लोगों को भी साथ लेकर, अपना समय, सार्थक करना चाहिये ॥१७॥ जितने कुछ उत्तम गुण हों उन सब को पहले स्वयं ग्रहण करना चाहिये, इसके बाद वही गुण दूसरे लोगों को सिखाना चाहिये। बहुत बड़ा समुदाय एकत्रित करना चाहिये, परंतु गुप्त रूप से ॥१८॥ उन सब को अखंड रीति से कार्य में लगाये रहना चाहिये और संपूर्ण संसार को उपासना में लगाना चाहिये। लोग जब जान लेते हैं कि यह सच्चा निस्पृह महंत है तब कहीं वे उसकी आज्ञा पाने की इच्छा करते हैं ॥१९॥ जब पहले कष्ट सहोगे तब फल मिलेगा। जहां कष्ट नहीं वहां फल कहां? बिना प्रयत्न के सब व्यर्थ ही है ॥२०॥ अनेक लोगों को खोजकर अपने साथ जोड़ना चाहिये, उनकी योग्यता जानना चाहिये, और फिर, योग्यता के अनुसार, किसी को पास और किसी को दूर रखना चाहिये ॥२१॥ योग्यता देखकर काम बतलाना चाहिये और कार्य-शक्ति देखकर विश्वास रखना चाहिये और अपना विचार कुछ और ही रखना चाहिये ॥२२॥ ये अनुभव के बोल हैं - पहले किये गये हैं, पीछे बतलाये गये हैं, यदि अच्छे लगे तो कोई ग्रहण करें ॥२४॥ महंत को चाहिये कि, वह अपने ही समान अनेक महंत बनायें, उन्हें 'युक्ति' और 'बुद्धि' से पूर्ण करके, ज्ञाता बनाकर, (अपने कार्य के प्रचार प्रसार हेतु) अनेक देशों में फैला दे ॥२५॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक १२

समास १

विमल लक्षण

(प्रपंच - परमार्थ विवेक)

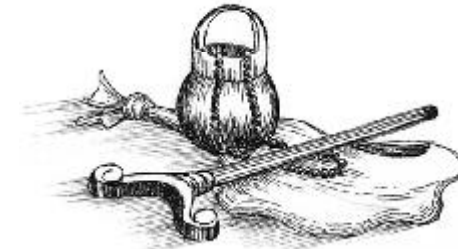
सुखानंद दे भीति को है भगाता ।
भजो मानवों जान लो श्रेष्ठ त्राता ॥
विवेकी बनो दुष्टता को भगाओ ।
उषःकाल में राम का रूप ध्याओ ॥

- मनोबोध .६९.

पहले 'प्रपंच' (गृहस्थ धर्म) का भलीभांति आचरण करना चाहिये, फिर परमार्थ का विचार ग्रहण करना चाहिये। हे विवेकी पुरुषों! इसमें आलस नहीं करना चाहिये ॥१॥ यदि प्रपंच छोड़कर परमार्थ करोगे तो इससे तुम दुखी होंगे। तुम विवेकी तभी कहलाओगे जब प्रपंच और परमार्थ दोनों की रक्षा करोगे ॥२॥ यदि प्रपंच छोड़कर कोई परमार्थ करेगा तो उसे खाने को अन्न ही नहीं मिलेगा, फिर तो उस अभागे के लिये परमार्थ का नाम भी मत लो ॥३॥ तथा, यदि कोई परमार्थ को छोड़कर केवल प्रपंच में ही उलझा रहेगा तो वह यमयातना भोगेगा और उससे अंत में परम कष्टी होगा ॥४॥ इसलिये भगवान का भजन करना चाहिये और परमार्थ का प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहिये ॥७॥ जो संसार में रहते हुए ही, उससे मुक्त (अलिप्त) रहता है, उसी को सच्चा भक्त जानना चाहिये। वह अखंड रीति से युक्तायुक्त का विचार किया करता है ॥८॥ जो प्रपंच में सावधान है, समझ लो कि, वह परमार्थ भी करेगा और जो प्रपंच में ही ठीक नहीं वह परमार्थ क्या करेगा? ॥९॥ इसलिये सावधानी के साथ प्रपंच और परमार्थ दोनों चलाना चाहिये। ऐसा न करने से नाना दुःख भोगने पड़ते हैं ॥१०॥ वनस्पतियों पर लगे कीट भी आगे देखकर चलते हैं - अर्थात् जीवजन्तु भी, इस प्रकार विवेक से चलते हैं - परंतु जो मनुष्य होकर भी भ्रम में पड़े हुए हैं, उन्हें क्या कहा जा सकता है! ॥११॥ अतएव

दूरदर्शिता का स्वीकार करना चाहिये, अखंड रीति से विचार करते रहना चाहिये और आगे होने वाली बातें भविष्य की घटनाएं - पहले ही जान लेनी चाहिये ॥१२॥ यह तो सभी जानते हैं कि, सावधान व्यक्ति सुखी रहता है और असावधानी दुखी ॥१३॥ अतएव, जो सब प्रकार से सावधान है वह धन्य है, वही लोगों को संतुष्ट रख सकता है ॥१४॥ पहले तो सावधान रहने में आलस किया और बीच में अचानक हमला हो गया, अब संभलने का मौका कहां है? ॥१५॥ इसलिये जो दूरदर्शी पुरुष हैं, उनके विचार का अनुकरण करना चाहिये, क्योंकि एक दूसरे का आदर्श देखकर ही लोग चतुर बनते हैं ॥१६॥ इसलिये चतुर और गुणवान लोगों की पहचान कर उनके गुणों को ग्रहण करना चाहिये और अवगुणों की परीक्षा कर उन्हें छोड़ देना चाहिये ॥१७॥ विवेकी पुरुष सबकी परीक्षा तो करता ही है, परंतु मन किसी का नहीं तोड़ता, वह मनुष्यमात्र को अपने अनुमान में लाकर परखता है ॥१८॥ वैसे तो वह सब के जैसा ही प्रतीत होता है, पर वास्तव में वह बड़ा अच्छा विवेकी होता है - वह उद्योगी और आलसी (काम के और निकम्मे) लोगों को अच्छी तरह पहचानता है ॥१९॥ उसमें सबसे बड़ी अपूर्वता यही होती है कि, वह जानबूझ कर, सब प्रकार के लोगों का अंगीकार करता है और जो जिसके योग्य हो उसका वैसा ही गौरव करता है ॥२०॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक १२

समास ४

विवेक-वैराग्य निरूपण

कहो राम का नाम जो सर्व दाता ।
किन्हीं संकटों की सुनोगे न वार्ता ॥
मदालस्य मात्सर्य छोड़ो जलाओ ।
उषःकाल में राम का रूप ध्याओ ॥

- मनोबोध .७०.

यदि किसी को राज्य प्राप्त हो जाए और वह उसका उपभोग करना न जाने, तो उसकी क्या दशा होगी? यही दशा बिना विवेक के वैराग्य वाले की होती है ॥१॥ गृहस्थी की नाना प्रकार की झंझटों से ऊब कर तथा दुःखी होकर वैराग्य आ जाता है और मनुष्य घर छोड़कर निकल जाता है ॥२-३॥ वह चिंता से छूटता है, पराधीनता से दूर होता है और सांसारिक दुःखों से मुक्त होकर किसी रोगी की तरह भला चंगा हो जाता है ॥४॥ परंतु उसे फिर पशुओं के समान स्वच्छन्द होकर नष्ट-भ्रष्ट नहीं होना चाहिए ॥५॥ बिना विवेक के जो वैराग्य लेता है, वह अविवेक से अनर्थ में पड़ता है और उसका दोनों ओर से सत्यानाश हो जाता है ॥६॥ उसका न तो प्रपंच सफल हो पाता है न परमार्थ, सारा जीवन व्यर्थ चला जाता है ॥७॥ बिना विवेक के ज्ञान की, परमार्थ की व्यर्थ बातें कहना ऐसा ही है जैसे कारागृह में बन्दी बना हुआ व्यक्ति पुरुषार्थ की बातें करें ॥८॥ वैराग्य के बिना ज्ञान की बातें करना व्यर्थ अभिमान का प्रदर्शन करना है। ऐसे आदमी को मोह और दंभ के कारण कष्ट उठाना पड़ता है ॥९॥ विवेक के बिना वैराग्य, अथवा वैराग्य के बिना विवेक-दोनों अवस्थाओं में शोक ही होता है। अब विवेक और वैराग्य दोनों का योग जिसमें होता है उसके लक्षण सुनिये : ॥११॥

ऐसा पुरुष विवेक के द्वारा भीतर से तो विरक्त होता है और वैराग्य के द्वारा 'प्रपंच' से अलग होता है - इस प्रकार वह अंतर्बाह्य मुक्त होकर

निःसंग योगी बन जाता है ॥१२॥ जैसा ज्ञान बतलाता है वैसा ही आचरण भी करता है। उसका उपदेश सुनकर बड़े-बड़े पवित्र पुरुष भी चकित हो जाते हैं ॥१३॥ वह त्रिलोक के राज्य की भी परवाह नहीं करता, उसमें वैराग्य की स्थिति समां जाती है और यत्न, विवेक तथा धारणाशक्ति की उसमें सीमा नहीं रहती ॥१४॥ वह हृदयपूर्वक सुंदर, रसमय हरिकीर्तन करता है, तालस्वर के साथ प्रेमपूर्वक, भक्तिपूर्ण भजन गाता है ॥१५॥ उसके हृदय में ऐसा विवेक जागृत रहता है कि, जिसके द्वारा वह अनेक लोगों को तत्काल ही सन्मार्ग में लगा सकता है। उसकी वक्तृता में प्रत्यक्ष अनुभव का साहित्य कभी छूट नहीं पाता ॥१६॥

सन्मार्ग-प्रचार करता हुआ, अपनी व्यापकता से, जो जगत् में संपूर्ण लोगों में घुल मिल जाता है, उस पर जगदीश प्रसन्न होता है। सच तो यह है कि, अवसर पहचानना चाहिये ॥१७॥ प्रखर वैराग्य, उदासीनता, अनुभवजन्य ब्रह्मज्ञान, स्नान-संध्या, भगवद्भजन और पुण्यमार्ग का आचरण होना चाहिये ॥१८॥ वास्तव में विवेकयुक्त वैराग्य ही पक्का वैराग्य है - केवल वैराग्य या केवल शब्दज्ञान से काम नहीं चलता ॥१९॥ अतएव विवेक और वैराग्य दोनों का होना महाभाग्य है। 'रामदास' कहते हैं कि, यह बात योग्य साधु ही जानते हैं ॥२०॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



दशक १२

समास १०

उत्तम पुरुष निरुपण

घनश्याम श्रीराम सौंदर्यमूर्ति ।
महाधीर हैं शूर विख्यात कीर्ति ॥
पुकारो उन्हें संकटों को भगाओ ।
उषःकाल में राम का रूप ध्याओ ॥

- मनोबोध .६७.

पेट भर भोजन करने के पश्चात् शेष बचा अन्न बांट देना चाहिये, वह व्यर्थ फेंक देना धर्म नहीं है ॥१॥ उसी प्रकार पहले स्वयं ज्ञान से तृप्त हो जाना चाहिये, फिर वही ज्ञान लोगों को बताना चाहिये। जो स्वयं उत्तम तैराक है वह डूबने वाले को डूबने से बचा ले यही योग्य है ॥२॥ (समर्थ के कहने का आशय है कि, ज्ञान प्राप्त कर चुके व्यक्ति पर समाज को संघटित कर उसे उन्नति का मार्ग दिखाने की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। इस समास में उन्होंने ऐसे ही व्यक्ति के लिये आवश्यक गुणों का वर्णन किया है।) श्रीसमर्थ कहते हैं -

पहले स्वयं उत्तम गुण ग्रहण करना चाहिये, फिर वही बहुतों को बताना चाहिये। बिना स्वयं आचरण किये जो केवल बातें करता है, वह मिथ्या है ॥३॥ शरीर परोपकार में लगाना चाहिये, बहुतों के काम आना चाहिये और किसी को हानि नहीं पहुंचानी चाहिये ॥५॥ सब से मीठे वचन बोलने चाहिये ॥६॥ दूसरे के दुख से दुखी और दूसरे के सुख से सुखी होना चाहिये और मृदु वचनों से प्राणिमात्र को अपना बना लेना चाहिये ॥७॥ बहुतों के अन्याय क्षमा करने चाहिये, बहुतों का काम करना चाहिये और गैर लोगों को भी अपना लेना चाहिये ॥८॥ मित-भाषण करना चाहिये, तत्काल ही उत्तर देना चाहिये और कभी क्रोध में नहीं आना चाहिये, क्षमारूप रहना चाहिये ॥१०॥ मरण का स्मरण रखना चाहिये, हरिभक्ति में तत्पर रहना चाहिये और इस प्रकार, मरने के बाद भी अपनी कीर्ति बनाये रखनी चाहिये ॥१३॥ जो विनीत-भाव रखता है, उसके लिये किसी बात की कमी नहीं है ॥१४॥ कोई चाहे जितना धिक्कार करे, अपनी शांति भंग नहीं होने देनी चाहिये। वे साधु धन्य हैं जो दुर्जनों के साथ

भी मिलकर रहते हैं ॥१६॥ स्वयं कष्ट सहकर बहुतों का उपकार करना चाहिये और इस प्रकार अपना शरीर परोपकार में लगाकर कीर्तिरूप से संसार में अमर होकर रहना चाहिये ॥१८॥ कीर्ति की खोज करें तो सुख नहीं है और सुख खोजें तो कीर्ति नहीं मिलती। बिना विचार के कहीं भी समाधान नहीं मिलता ॥१९॥ जिस वाणी से दूसरे को दुःख पहुंचता हो वह वाणी अपवित्र है - वह किसी समय अपना भी घात कर बैठेगी ॥२५॥ जो बोया जाता है वही उगता है, जैसा बोला जाता है, वैसा ही उत्तर मिलता है, तो फिर कर्कश क्यों बोलना चाहिए? ॥२६॥ अपने पुरुषार्थ और वैभव से बहुतों को सुखी करना अच्छा है, परंतु किसी को कष्ट देना राक्षसी काम है ॥२७॥ दंभ, दर्प, अभिमान, क्रोध और कठिन वचन अज्ञान का लक्षण है ॥२८॥ जो उत्तम गुणों से सुशोभित है वही महासज्जन है, और उसी को कितने ही लोग ढूंढते फिरते हैं ॥२९॥ जो पुरुष मन से भक्ति करता है और उत्तम गुणों को अवश्य ग्रहण करता है उस महापुरुष को लोग ढूंढते चले आते हैं ॥३१॥ ऐसे महानुभाव पुरुष को समुदाय एकत्र करना चाहिये और भक्तियोग से उस देवाधिदेव परमात्मा को अपना बना लेना चाहिये ॥३२॥ (लोगों को अपने साथ जोड़ने के लिये) पीछे जो उत्तम गुण बतलाए गये वे तो आवश्यक हैं ही, पर प्रबोधशक्ति (दूसरों को अपने विचार समझाने की क्षमता) सबसे अधिक आवश्यक है ॥३८॥ जो बोलने के अनुसार चलता है, जो पहले स्वयं आचरण कर फिर अन्यो को उपदेश देता है उसकी बातें सभी लोग सत्य मानते हैं ॥३९॥ जो बातें लोगों को पसंद नहीं वे बातें लोग मानते ही नहीं - और अकेला आदमी क्या कर सकता है? ॥४०॥ इसलिये साथी होने चाहिये - उन्हें थोड़ा-थोड़ा सिखाते जाना चाहिये और धीरे-धीरे विवेक से पार लगाना चाहिये ॥४१॥ परंतु ये विवेक की बातें हैं - इनको विवेकी ही ठीक-ठीक कर सकता है। अन्य बेचारे तो भ्रमवश आपस में ही झगड़ने लगते हैं ॥४२॥ बिना सेना के सेनापति अकेला जिस प्रकार युद्ध नहीं कर सकता उसी प्रकार जो नेता अनेकों के साथ झगड़ता रहता है, वह अकेला कोई कार्य नहीं कर सकता। इस कारण उत्तम नेता वही है जो अनेकों को अपना बनाकर रखता है ॥४३॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक १४

समास १

निस्पृह लक्षण

किया कर्म कैसा स्वयं को विचारो ।

धरो शुद्ध बुद्धि स्वयं को सुधारो ॥

यथा बोलते हो करो कार्य वैसा ।

मिटेगा निराकल्पना ताप तैसा ॥

- मनोबोध . १०५.

समाज के बीच रहकर समाज की उन्नति के लिये कार्य करना आसान नहीं है। समाज का नेतृत्व करने वाले को एक बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिये कि, समाज संशयी वृत्ति से उसकी प्रत्येक कृति का निरीक्षण कर रहा है, मूल्यमापन कर रहा है। ऐसे व्यक्ति को अत्यंत प्रामाणिक, अत्यंत निस्पृह होना चाहिये। ऐसे महंत अर्थात् प्रचारक ने अपने व्यक्तिगत जीवन में कितनी सावधानी बरतनी चाहिये, इसका परमोच्च आविष्कार हमें इस समास में देखने को मिलता है। वे ही लक्षण हम संक्षेप में देखेंगे। श्रीसमर्थ कहते हैं -

पहले तो निस्पृहता रखनी ही नहीं चाहिये और यदि रख ली हो तो छोड़ना नहीं चाहिये और यदि छोड़ दी हो तो पहचान वालों में घूमना नहीं चाहिये ॥४॥ कांता को दृष्टि में रखना नहीं चाहिये, कांता-विषय का स्वाद मन को चखाना नहीं चाहिये और यदि धैर्य का भंग हो जाये तो फिर लोगों में अपना मुंह तक दिखाना नहीं चाहिये ॥५॥ एक स्थल पर अधिक काल तक रहना नहीं चाहिये। सतत् भ्रमण करते रहना चाहिये, जन सामान्य के साथ बहुत अधिक घुलना मिलना नहीं चाहिये ॥६॥ आचारभ्रष्ट होना नहीं चाहिये, कोई द्रव्य दे तो लेना नहीं चाहिये और अपने ऊपर कोई दोष आने देना नहीं चाहिये ॥७॥ भिक्षा मांगने में लज्जा करनी नहीं चाहिये, बहुत भिक्षा लेनी नहीं चाहिये और पूछने पर भी अपनी पहचान बतानी नहीं चाहिये ॥११॥ करुणा-कीर्तन छोड़ना नहीं चाहिये, अंतर-ध्यान में खंड पड़ने देना नहीं चाहिये और सगुण मूर्ति का प्रेमतंतु तोड़ना नहीं चाहिये ॥१२॥ मन में चिंता रखनी नहीं चाहिये, कष्ट में खेद मानना नहीं

चाहिये और कुछ भी हो, समय पर धैर्य खोना नहीं चाहिये ॥१३॥ शीघ्रकोपी होना नहीं चाहिये, झगड़ालु से झगड़ना नहीं चाहिये और अपनी अंतरस्थिति बिगड़ने देनी नहीं चाहिये ॥१७॥ एक वेष रखना नहीं चाहिये, एक ही साज से रहना नहीं चाहिये और एकदेशीय न होकर सर्वत्र भ्रमण करते रहना चाहिये ॥२०॥ शरीर के साथ कोई नेम लगा नहीं लेना चाहिये, किसी को भरोसा देना नहीं चाहिये और किसी निश्चित बात का अंगीकार करना नहीं चाहिये ॥२१॥ नित्यनेम छोड़ना नहीं चाहिये, अभ्यास डूबने देना नहीं चाहिये और कुछ भी हो परतंत्र होना नहीं चाहिये ॥२२॥ परंपरा तोड़ना नहीं चाहिये, उपासनमार्ग की उपाधि मोड़ना नहीं चाहिये और ज्ञानमार्ग छोड़ना नहीं चाहिये ॥२६॥ कर्ममार्ग छोड़ना नहीं चाहिये, वैराग्य में कमी आनी नहीं चाहिये और साधन-भजन में खंड पड़ना नहीं चाहिये ॥२७॥ कठोर वचन बोलना नहीं चाहिये, कठिन आज्ञा करनी नहीं चाहिये, कठिन धैर्य छोड़ना नहीं चाहिये ॥३५॥ स्वयं आसक्त होना नहीं चाहिये, किये बिना कहना नहीं चाहिये, शिष्यवर्ग से बहुत कुछ मांगना नहीं चाहिये ॥३५॥ बड़प्पन में भूलना नहीं चाहिये, न्यायनीति छोड़ना नहीं चाहिये और कुछ भी हो, अप्रामाणिक आचरण करना नहीं चाहिये ॥३९॥ संशयात्मक बोलना नहीं चाहिये, बहुत निश्चय करना नहीं चाहिये और ग्रंथ समझे बिना उसे दूसरे को समझाने के लिये हाथ में उठाना नहीं चाहिये ॥४६॥ स्वार्थबुद्धि रखना नहीं चाहिये, कारोबार में पड़ना नहीं चाहिये और राजद्वार में कार्यकर्ता बनना नहीं चाहिये ॥४९॥ विवाह इत्यादि में मध्यस्थ बनना नहीं चाहिये, प्रपंच के झगड़े में पड़ना नहीं चाहिये ॥५१, ५२॥ श्राद्ध-पक्ष, छठी, बर्सी, उद्यापन आदि में निस्पृह पुरुष को जाना नहीं चाहिये - वहां का अन्न खाना नहीं चाहिये और अपने को दीन बनाना नहीं चाहिये ॥५३, ५४॥ लग्न प्रसंग में जाना नहीं चाहिये, पेट के लिये गाना नहीं चाहिये और धन लेकर कहीं भी कीर्तन करना नहीं चाहिये ॥५५॥ अपनी भिक्षा छोड़नी नहीं चाहिये, वार लगाकर भी भोजन करना नहीं चाहिये ॥५६॥ कहीं मठ बनाना नहीं चाहिये, यदि बनाया हो तो उसे पकड़ कर रहना नहीं चाहिये - निस्पृह पुरुष को मठाधिपति बनकर बैठना नहीं चाहिये ॥५८॥

मुख्य बात यह है कि, निस्पृह को सब कुछ करना चाहिये, पर स्वयं उसमें फंसना नहीं चाहिये और अलग रहकर ही भक्तिमार्ग स्थापित करना चाहिये ॥५९॥

इस समास के ओवी क्रमांक ६२ से ७६ के बीच निस्पृह के लक्षण बताते समय श्रीसमर्थ ने एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा सामने रखा है। वह यह कि ऐसे निस्पृह महंत ने कभी भी अतिवादी (extreme) भूमिका नहीं रखनी चाहिये। वीणा के तार बहुत अधिक खींचे तो टूट जाते हैं, ढीले छोड़ दें तो संगीत निर्माण नहीं हो सकता। इसके लिये तार को उचित तनाव में रखना पड़ता है। अपने स्वयं के जीवन में संगीत निर्माण हो ऐसा जिसे लगता है उसने अतिवादी भूमिका छोड़कर मध्यम मार्ग अपनाना चाहिये। यही बात समझाते हुए श्रीसमर्थ कहते हैं -

निस्पृह महंत ने उपाधि में पड़ना नहीं चाहिये, उपाधि शरीर में लगाना नहीं चाहिये और अव्यवस्थित होकर भजन मार्ग में खंड पड़ने देना नहीं चाहिये ॥६१॥ बहुत उपाधि करना नहीं चाहिये, पर उपाधि बिना भी काम नहीं चलता। सगुण भक्ति छोड़ना नहीं चाहिये, परंतु ईश्वर से विभक्त होकर भी रहना अच्छा नहीं ॥६२॥ बहुत दौड़भाग (सतत भ्रमण) करना नहीं चाहिये और एक ही स्थान पर पड़े भी रहना नहीं चाहिये। अपने को सहन न हों इतने कष्ट करना नहीं चाहिये और आलस्य में पड़े भी रहना नहीं चाहिये ॥६३॥ बहुत बोलना नहीं चाहिये, पर बोले बिना भी काम नहीं चलता। बहुत भोजन करना नहीं चाहिये, पर बहुत उपवास भी अच्छा नहीं ॥६४॥ निस्पृह महंत न तो बहुत समय तक सोये न ही बहुत जागरण करे। न वह अपने पीछे बहुत नियम लगा ले और न ही एकदम अनियमित हो जाए ॥६५॥ उसने न तो सतत् लोकांत में (लोगों के बीच) रहना चाहिये न सतत् एकांत में रहना चाहिये। शरीर यह ईश्वर प्राप्ति का साधन है इसका ध्यान रखकर न तो शरीर की ओर दुर्लक्ष्य करना चाहिये, न ही शरीर द्वारा कार्यसंपन्न होना है यह सोचकर शरीर के अतिरिक्त लाड़ ही करना चाहिये ॥६६॥ उसने न तो बहुत अधिक कर्मठ होना चाहिये न ही स्वैराचारी। बहुत संग करना नहीं चाहिये, परंतु संतसंग छोड़ना नहीं चाहिये ॥६७॥ उसने लोगों में आसक्त तो नहीं होना चाहिये परंतु सर्वसाधारण

लोगों के प्रति बहुत कठोर भी नहीं होना चाहिये ॥६८॥ उसने चौबीसों घंटे न तो साधना में डूबे रहना चाहिये न समाजसेवा में। साधना और समाजसेवा के बीच संतुलन बनाये रखना चाहिये ॥६९॥ बहुत विषय भोगना नहीं चाहिये, पर बिलकुल विषय-त्याग किया नहीं जा सकता ॥७०॥ “मैं ब्रह्म हूँ” इसका अनुभव वह प्राप्त कर ले, परंतु साधारण आचरण में शरीर धर्मों का पालन करे। उसने अपनी आत्मस्थिति बतलानी नहीं चाहिये, परंतु गिने चुने अधिकारी साधकों के सामने अपनी आत्मस्थिति बतलाने में आपत्ति नहीं है ॥७१॥ साधना करते समय वह उन्मनी अवस्था का आनंद ले, परंतु जनसामान्य के बीच व्यवहार करते समय उसका आचरण विक्षिप्त न हो ॥७२॥ वह सतत् तर्क करने में उलझा न रहे, परंतु उसके विचार तर्कशुद्ध हों। अपने को ज्ञान प्राप्ति हो चुकी है, यह बात वह भूल जाए, परंतु उसके व्यवहार में कहीं अज्ञान दिखाई न दे ॥७४॥ वह सतत् जग की चिंता में डूबा न रहे, परंतु उसे संसार का विस्मरण भी न हो। वह सतत् आध्यात्मिक चर्चा न करे, परंतु योग्य प्रसंग में आध्यात्मिक चर्चा करना टालना नहीं चाहिये ॥७५॥ समाज में रहते समय उसने जाति अथवा वर्ण व्यवस्था के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिये, परंतु इनके विरुद्ध आंदोलन भी छोड़ नहीं देना चाहिये। उसने अपना धर्म छोड़ना नहीं चाहिये, परंतु अतिधर्माभिमान भी अच्छा नहीं ॥७६॥

तात्पर्य, ऐसे निस्पृह महंत अर्थात् प्रचारक का संपूर्ण जीवन संतुलित हो। ऐसा मानसिक संतुलन ही शुद्ध परमार्थ है। भगवद्गीता कहती है - “समत्वं योग उच्यते।” मन भावनाशील है तो बुद्धि विवेकप्रधान है। निस्पृह महंत के जीवन में भावनाशीलता और विवेक इनका सुंदर समन्वय होना चाहिये। ऐसा कार्यकर्ता ही समाज का सर्वाधिक कल्याण करता है।

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक १४

समास २

भिक्षा निरूपण

कभी वे नहीं भूलते हैं किसी को ।
करें क्या न श्रद्धा रही है हमीं को ॥
पुराण प्रतिज्ञा सदा है बखानी ।
नुपेक्षे कदा रामदासाभिमानी ॥

- मनोबोध . ३४.

महंत लक्षण और निस्पृह लक्षण के समासों में समर्थ ने जिस कार्यकर्ता का वर्णन किया है, वह समर्थ संप्रदाय का कार्यकर्ता एक प्रकार से वैरागी अर्थात् संन्यासी ही है। वह गुणवान है, ज्ञानी है, भक्त है, निष्काम कर्मयोगी है और संपूर्ण रूप से राष्ट्रकार्य को समर्पित पूर्णकालीन प्रचारक है। ऐसा व्यक्ति अपने उदरनिर्वाह के लिये क्या करे? यदि वह किसी की चाकरी करेगा तो उसकी स्वतंत्रता को बाधा पहुंचेगी। वह चाहे जितना अपरिग्रही क्यों न हो, उसे दिन में दो बार भोजन तो चाहिये। इस समास में समर्थ इसका सरल उपाय बताते हैं। ऐसा व्यक्ति जन्म से किसी भी जाति को हो, वह ब्राह्मण ही है। वह समाज से ही भिक्षा प्राप्त करे और उसे भी अपनी कार्यपूर्ति का, समाज को जोड़ने का साधन बना ले। समर्थ कहते हैं :-

ब्राह्मण की मुख्य दीक्षा यह है कि, भिक्षा मांगनी चाहिये और “ॐ भवति भिक्षां देहि” इस व्रत की रक्षा करनी चाहिये ॥१॥ जो साधक भिक्षा मांगकर खाता है, वह निराहारी माना जाता है और इस कारण वह प्रतिग्रह (फोकट में दान लेना) के दोष से मुक्त ही रहता है ॥२॥ सज्जन और दुर्जन दोनों ही प्रकार के लोग जहां रहते हैं, ऐसी बस्ती में कोरात्र (सीधा) मांग कर जो अपना पेट भरता है, वह प्रतिदिन अमृतसेवन ही करता है ऐसे मानना चाहिये ॥३॥ ऐसी भिक्षा की महिमा है। भिक्षा मांगना सर्वोत्तम ईश्वर को भी पसंद है। बड़े-बड़े सिद्ध योगी तक भिक्षा मांगते हैं ॥४॥ दत्तात्रेय, गोरखनाथ, आदि सिद्ध पुरुषों ने भी भिक्षा मांगी है। भिक्षा से निस्पृहता प्रगट होती है ॥५॥ नित्य नूतन स्थानों पर घूमना चाहिये, खूब देशाटन करना

चाहिये, तभी भिक्षा मांगने में शोभा है और तभी प्रशंसा होती है ॥८॥ जिसे भिक्षा मांगने का अखंड अभ्यास है उसके लिये कोई विदेश नहीं है। वह जहां भी जाए, तीनों लोक उसके लिये स्वदेश ही है ॥९॥ जो पुरुष अनेक चमत्कार करता है, ऐसे पुरुष को निस्पृहता के साथ, भिक्षा मांगते देखकर छोटे-बड़े सभी चकित हो जाते हैं ॥१०॥ भिक्षा से पहचान होती है, भिक्षा से भ्रम मिटता है और साधारण भिक्षा सब स्वीकार कर लेते हैं ॥१३॥ भिक्षा एक प्रकार की निर्भयस्थिति है, भिक्षा से महंती प्रगट होती है। भिक्षा के द्वारा स्वतंत्रता मिलती है और ईश्वर प्राप्ति होती है। भिक्षा के द्वारा समय को सार्थक कर सकते हैं ॥१४, १५॥ गोरज्य (गायें पालना), वाणिज्य और कृषि से भी भिक्षा की प्रतिष्ठा अधिक है ॥१८॥ भिक्षा के समान अन्य वैराग्य नहीं है और वैराग्य के समान अन्य सौभाग्य नहीं है ॥१९॥ यह पूछने पर कि “कुछ भिक्षा है?” यदि कोई बहुत भिक्षा देने लगे तो, अल्पसंतोषी रहकर, सिर्फ एक मुट्ठी ले लेना चाहिये ॥२०॥ आनंदपूर्वक भिक्षा मांगना चाहिये। यही निस्पृहता का लक्षण है। मधुर वचन से सबको सुख होता है ॥२१॥

यह भिक्षा की महत्ता है। भिक्षा मांगने वाला जिस स्थिति में स्थापित होता है, भिक्षा की महत्ता उतनी ही बढ़ती जाती है। इसीलिये श्रीसमर्थ समान महापुरुष की भिक्षा की झोली में शिवाजी महाराज समान राजपुरुष अपना संपूर्ण राज्य समर्पित कर देता है तो आधुनिक भारत के सबसे बड़े भिखारी और सबसे बड़े दानी कहे गये महामना पंडित मदनमोहन मालवीय संपूर्ण देश में भ्रमण करते हुए दान-अर्थात् भिक्षा मांग कर बनारस हिंदू विश्वविद्यालय समान असाधारण विश्वविद्यालय की स्थापना कर देते हैं।

भिक्षा मांगना यह अतिशय सामान्य कार्य प्रतीत हो सकता है, परंतु “ॐ भवति भिक्षां देहि” कहकर भिक्षा के लिये फैलायी गयी समर्थ की झोली किसी लाचार व्यक्ति की झोली नहीं है। वह झोली है राष्ट्र के लिये जीवन समर्पित करने वाले एक स्वाभिमानी महापुरुष की। शून्य से राज्य निर्माण करने का सामर्थ्य उस भिक्षा की झोली में है।

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक १४

समास ६

चातुर्य लक्षण

बिना राम के व्यर्थ जो काल बीता ।
गया मान लो घोर हानि कराता ।।
प्रभू नाम को भूलना है विपत्ति ।
जियो दक्षता से करो लक्ष्य प्राप्ति ।।

- मनोबोध . ४६.

इस समास में श्री समर्थ ने हमें फिर एक बार चतुरता के साथ जीवन जीकर उसका सार्थक कर लेने की सीख दी है। वे कहते हैं :- रूप और लावण्य का अभ्यास किया नहीं जा सकता, स्वाभाविक गुणों के लिये कोई उपाय नहीं चलता, अतएव, आगंतुक गुणों का विकास करने का कुछ उपाय करना चाहिये ॥१॥ काला मनुष्य गौरा हो नहीं सकता, मूक बोल नहीं सकता, अंधा देख नहीं सकता, बधिर सुन नहीं सकता और कुरूप व्यक्ति सुंदर बन नहीं सकता। ये सारे स्वाभाविक गुण हैं। इन पर हमारा वश नहीं है ॥२-४॥ परंतु अवगुण छोड़ने से चले जाते हैं, अभ्यास करने से उत्तम गुण आते हैं, इसलिये चतुर लोग कुविद्या छोड़कर सुविद्या सीखते हैं ॥५॥ प्रतिष्ठा पाना यदि पसंद है तो फिर इसकी उपेक्षा क्यों करना चाहिये? बिना चतुरता के ऊंची पदवी कदापि नहीं मिल सकती ॥६॥ यदि यह बात अनुभव से समझ में आती है तो फिर स्वहित क्यों नहीं कर लेते? सन्मार्ग पर चलने वालों को ही सज्जन कहते हैं ॥७॥ देह का चाहे जितना श्रृंगार किया जाये, परंतु यदि चतुरता नहीं है तो सब व्यर्थ है। गुण के बिना ऊपर-ऊपर रूप संवारने से कोई लाभ नहीं ॥८॥ अपने अंतरंग (अंतःकरण) का श्रृंगार करना चाहिये, नाना प्रकार से ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और संपदा प्राप्त करके सुख से भोगना चाहिये ॥९॥ जो प्रयत्न नहीं करता, सीखता नहीं, शरीर से श्रम भी नहीं करता, उत्तम गुण नहीं लेता और सदा क्रोध करता है, उसे सुख नहीं मिलता ॥१०॥ हम दूसरे

के साथ जैसा करेंगे वैसा ही प्रतिफल हमें तुरंत मिलेगा। अन्यों को कष्ट देने से हमें भी कष्ट ही उठाना पड़ेगा ॥११॥ जो न्याय से चलता है वह चतुर है और जो अन्यायी है वह नीच है। नाना चतुराइयों के लक्षण चतुर ही जानता है ॥१२॥ लोग तुम पर प्रसन्न रहें या सभी लोग तुम्हारे ऊपर टूट पड़ें? इनमें से जिसमें तुमको समाधान मिले वही बात करनी चाहिये ॥१३॥ समाधान से समाधान बढ़ता है, मैत्री से मैत्री जुड़ती है और नाश करने से क्षणभर में भलाई का नाश हो जाता है ॥१४॥ हम सामने वाले से जिन शब्दों में बात करेंगे, वह उसी भाषा में प्रत्युत्तर देगा। फिर निकम्मापन क्यों करते हो? ॥१५॥ अच्छा खाना, अच्छा पीना, अच्छा पहनना और सब में अच्छा कहाना सभी चाहते हैं ॥१६॥ परंतु जब तक कोई तन-मन से परिश्रम न करे तब तक कोई प्रशंसा नहीं करता। व्यर्थ संकल्प-विकल्प में पड़ने से कष्ट ही होता है ॥१७॥ लोगों का रुका हुआ कार्य जिसके द्वारा होता है उसके पास लोग स्वाभाविक ही अपने काम से आते हैं ॥१८॥ इसलिये दूसरों को सुख देकर उससे स्वयं भी सुखी होना चाहिये। दूसरे को दुःख देने से अपने को भी कष्ट उठाना पड़ता है ॥१९॥ जो समझ बूझकर जीवन जीते हैं, वे ही भाग्यवान कहलाते हैं, उन्हें छोड़कर बाकी सब अभाग्य हैं ॥२०॥ आलस से कार्यनाश होता है, प्रयत्न धीरे-धीरे होता है। यह प्रगट बात जो समझ ना पाये, उसे सयाना कैसे कहें? ॥२१॥ बहुतों के मुख में रहना चाहिये, बहुतों के अंतःकरण में स्थान पाना चाहिये और प्राणिमात्र को उत्तम गुण सिखाते रहना चाहिये ॥२२॥ (स्वयं चतुर बनकर) लोगों को चतुर बनाना चाहिये, पतितों को पावन करना चाहिये और सृष्टि में भगवद्भजन बढ़ाना चाहिये ॥२३॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक १४

समास ७

युगधर्म निरूपण

न आना न जाना यदि चाहते हो ।
महाचक्र टूटे यदि चाहते हो ।।
तजो वासना कामना द्रव्य दारा ।
धरो चित्त में राम ही का सहारा ।।

- मनोबोध . २१.

नाना वेष और नाना आश्रम आदि सबका मूल गृहस्थाश्रम है। इस आश्रम में सब प्रकार के लोग विश्राम पाते हैं ॥१॥ देव, ऋषि, मुनि, योगी, तपस्वी, वीतरागी, पितृ आदि अधिकारी, अतिथि-अभ्यागत, इत्यादि सब गृहस्थाश्रम में ही जन्म लेते हैं। यद्यपि ये लोग अपना आश्रम छोड़ देते हैं, तथापि कीर्तिरूप से वे गृहस्थ के घर में सदा निवास करते हैं ॥२, ३॥ इस कारण गृहस्थाश्रम सबसे श्रेष्ठ है परंतु उसमें स्वधर्म और भूतदया होनी चाहिये ॥ वेदविहित कर्मों का आचरण करना चाहिये और सबसे मधुर वचन बोलना चाहिये ॥५॥ सब प्रकार से उचित व्यवहार करना चाहिये, सब काम शास्त्रानुकूल करना चाहिये और भक्ति मार्ग पर चलना चाहिये ॥६॥ जो काया, वाचा, जीव और प्राण से भगवान के लिये कष्ट करता है, और मन से भजन मार्ग पर दृढ़ होता है, वही सच्चा भगवद्भक्त है ॥८॥ वह विशेष कर भीतर से विरक्त होता है और संसार की चिंता छोड़कर, ईश्वर के लिये मुक्त बन जाता है ॥९॥ वास्तव में जिसमें भीतर से वैराग्य है, वही महाभाग्यशाली है। आसक्ति के समान अन्य दुर्भाग्य नहीं है ॥१०॥ बहुत से नृप राज्य छोड़कर भगवान् के लिये इधर-उधर घूमते रहे और भूमंडल में कीर्तिरूप से पावन हुए ॥११॥ उन उदासीन वृत्ति वाले आत्मज्ञानियों के दर्शनमात्र से मनुष्य पावन होते हैं ॥१३॥ उनसे मनुष्य मात्र का कल्याण ही होता है, उनसे किसी की बुराई नहीं होती और उनका हृदय अंड रीति से, भगवान् में लगा रहता है ॥१४॥ जब पूर्वजों के करोड़ों पुण्यों का संग्रह होता है तभी किसी की ऐसे पुरुष से भेंट होती है ॥१७॥

प्रतीतिरहित जो ज्ञान है वह प्रायः सभी अनुमानमात्र है, उसके द्वारा मनुष्य को मुक्ति नहीं मिल सकती ॥१८॥ कोई अबुद्ध सुख के लिये गृहस्थी छोड़ जाते हैं, फिर भी वे दुःख के दुःख में ही मर जाते हैं और इहलोक और परलोक दोनों से वंचित होकर रह जाते हैं ॥२०॥ जो क्रोध करके घर से निकल जाता है वह बहुत लोगों को दुःखी करता है और स्वयं भी दुःखी हो जाता है ॥२१॥ कोई बैरागी बनकर निकल जाता है, परंतु अज्ञानी ही रह जाता है। उसके आसपास चेले भी एकत्रित हो जाते हैं - परंतु गुरु और शिष्य दोनों ही समान रूप से अज्ञानी बने रहते हैं ॥२२॥ इस प्रकार का आशाबद्ध और अनाचारी यदि गृहस्थी छोड़कर निकल जाता है तो वह लोगों में अनाचार ही फैलाता है ॥२३॥ परंतु जो संसार को मिथ्या जानकर, ज्ञान प्राप्त कर निकल जाता है, वह अपने समान लोगों को भी पावन करता है ॥२४॥ एक की संगति से लोग तर जाते हैं और एक की संगति से डूब जाते हैं ॥२६॥ जो स्वयं विवेकवान् नहीं है वह दूसरे को क्या उपदेश देगा? परंतु जो दूसरे के हृदय की बात जानता है, देश, काल और प्रसंग जानता है, उसे जगत् में किस बात की कमी है? ॥२८॥

जहां नीच व्यक्ति गुरुत्व पाता है वहां आचार ही डूब जाता है, ऐसी दशा में वेद, शास्त्र, ब्राह्मण को कौन पूछता है? ॥२९॥ ब्रह्मज्ञान के विचार का अधिकार ब्राह्मण को ही है। ऐसा भी कहा गया है कि, “वर्णानां ब्राह्मणों गुरुः” - अर्थात् सब वर्णों का गुरु ब्राह्मण है ॥३०॥ परंतु ब्राह्मण बुद्धिच्युत हो गये हैं, आचार-भ्रष्ट हो गये हैं और गुरुत्व छोड़कर शिष्यों के भी शिष्य हो गये हैं! ॥३१॥ यही कलियुग के आचार का हाल है।

भगवद्गीता के अनुसार शम, दम, तप, शौच, शांति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य ये ब्राह्मण के लिये आवश्यक गुण हैं। परंतु श्रीसमर्थ के काल में ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी अधिकतर ब्राह्मण पथभ्रष्ट हो गये थे। इसी से व्यथित होकर समर्थ ने ये ओवियां लिखी हैं।

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक १५

समास २

निस्पृहव्याप लक्षण

सदा सोचता है तभी बोलता है ।
क्रिया जो करे पूर्व में तौलता है ॥
सुने शब्द तो तप्त भी शांत होते ।
क्रिया शुद्ध हो सर्व ही तृप्ति पाते ॥

- मनोबोध . १३२.

दासबोध का यह समास यानी एकप्रकार से श्रीसमर्थ का आत्मचरित्र ही है। समास की प्रथम १२ ओवियों में उन्होंने तत्कालीन समाज की दुरवस्था का वर्णन किया है और फिर उसमें से समाज को उबारने के लिये उन्होंने स्वयं क्या किया इसका वर्णन किया है। समास की अंतिम ओवी पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीसमर्थ यहां अपने ही कार्य का वर्णन कर रहे हैं। समास के प्रारंभ में वे कहते हैं :-

पृथ्वी में छोटे-बड़े बहुत से मानव शरीर भरे पड़े हैं, और वे क्षण-क्षण में अपने मनोविकार बदलते रहते हैं ॥१॥ जितनी मूर्तियां हैं उतने ही स्वभाव हैं। कहां तक देखें? ॥२॥ कितने ही म्लेच्छ हो गये, कितने ही फिरंगियों में मिल गये और कितने ही भाषा भेद के कारण अटके पड़े हैं ॥३॥ इस प्रकार “महा-राष्ट्रीय” बहुत थोड़े बचे हैं और जो रह गये हैं वे भी राजनीति में उलझे हुए हैं - उन्हें भोजन के लिये भी समय नहीं ॥४॥ कितने ही रात-दिन युद्ध में लगे रहने से उन्मत्त हो गये हैं और रात-दिन युद्ध की चर्चा में लगे रहते हैं ॥५॥ उद्यमी लोग अपने ही व्यापार में फंसे हैं, उन्हें भी अवकाश नहीं, सदा अपने ही पेट के धंधे में लगे रहते हैं ॥६॥ षड्दर्शन, नाना मत और पाखंड बहुत बढ़ गये हैं, जहां देखो वहां लोग इन्हीं विषयों का उपदेश देते फिरते हैं ॥७॥ स्मार्त और वैष्णवों का भी बोलबाला है। खूब गड़बड़ मचा हुआ है ॥८॥ कितने ही कामना के भक्त ठौर-ठौर में आसक्त हो रहे हैं। उचित-अनुचित का विचार कौन करता है? इस गड़बड़ में कोई दूसरे गड़बड़ बढ़ाते हैं वे वैदिकों की आंखों में कांटों की तरह चुभते हैं ॥९०॥ इसमें भी हरिकीर्तन की ओर बहुत लोगों का मन लगा है।

प्रत्ययात्मक ब्रह्मज्ञान कौन देखता है? ॥११॥ अस्तु! ज्ञान बहुत दुर्लभ है, यह अलभ्य लाभ पुण्य से होता है। परंतु विचारवान पुरुष के लिये सब कुछ सुलभ है ॥१२॥ ऐसी विषम परिस्थिति में भी जो तीक्ष्ण कार्यकर्ता है वह क्षणभर भी व्यर्थ जाने नहीं देता। ऐसा चतुर, तार्किक और विलक्षण पुरुष सभी को मान्य होता है ॥१४॥ उसे अनेक बातें, दृष्टान्त कंठस्थ होते हैं, उन्हें वह लोगों के बीच कहने लगता है और अपने सामर्थ्य के बल से नीति-मार्ग को स्वच्छ और प्रशस्त कर देता है ॥१५॥ वह प्रबोध शक्ति के अनंत मार्ग जानता है, सबके अंतःकरण की बात जानता है। इस कारण लोग उसका निरूपण रुचि से सुनते हैं ॥१६॥ अनुभवयुक्त वचनों से वह मतमतान्तर सपाट कर देता है, लोकरीति की चिंता न करते हुए सबके मन अपनी ओर आकर्षित कर लेता है ॥१७॥ प्रसंगानुसार नीतिपूर्ण परंतु प्रभावशाली वचन बोलता है, और उदास वृत्ति के अभिमान में कभी भी उठकर चल देता है ॥१८॥ उससे मिलने की तीव्र इच्छा से लोग उसकी खोज करते हैं, परंतु वह कहीं भी मिलता नहीं ॥१९॥ वह भिखारी समान हीन दीन वेष में रहता है परंतु गुप्तरूप से महान कार्य करता है! अतएव उसकी यश-कीर्ति और प्रताप असीम बढ़ता जाता है ॥२१॥ वह दुर्गम गिरी-कंदराओं में निवास करता है, सबसे दूर वहीं रहकर सब की चिंता करता है ॥२३॥ वह संघशक्ति बढ़ा कर लोगों को राष्ट्रकार्य में लगाता है ॥२५॥ वे लोग फिर अपने समुदाय बनाते हैं, ये समुदाय आपस में मिलते जाते हैं, अमर्यादित होते जाते हैं और गुप्त रूप से भूमंडल पर उसकी निस्पृह सत्ता फैल जाती है ॥२६॥ जगह-जगह उसके संघ बनते जाते हैं; समाज उसकी ओर आकर्षित होता जाता है और चारों ओर परमार्थ-बुद्धि का खूब प्रचार होता है ॥२७॥ स्थान-स्थान पर भक्तों के समुदाय एकत्रित कर उपासना बढ़ाता है और अपने अनुभव से प्राणीमात्र का उद्धार करता है ॥२८॥

समास के अंत में श्रीसमर्थ कहते हैं -

इस प्रकार की कीर्ति संपादित करने में ही संसार में जन्म लेना सार्थक है। सहज परंतु संकेत में मैंने यह वर्णन किया है ॥३०॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक १८

समास ६

उत्तमपुरुष

धर्मस्थापना के नर ।
वे ईश्वर के अवतार ॥
हो गये हैं, आते रहेंगे ।
वरदान ही वे परमेश्वर के ॥

दासबोध . १८.६.२०.

दासबोध के इस समास का संबंध छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा अफझलखान का वध किया जाने की घटना से है। जानकारों के अनुसार इस समास की प्रथम दस ओवियों में श्रीसमर्थ ने शिवराय को अफझलखान से भेंट करने जाते समय कौन-कौनसी सावधानी बरतनी चाहिये इसकी सूचना दी है और शेष दस ओवियों में अफझलखान का वध होने के पश्चात् शिवराय का अभिनंदन किया है। समास की प्रथम दो ओवियों में श्रीसमर्थ ने अफझलखान से मिलने जाते समय शिवछत्रपति ने कवच पहनकर जाना चाहिये यह संकेत दिया है। वे कहते हैं -

अनेक प्रकार के वस्त्र और आभूषणों से शरीर का शृंगार किया जाता है। विवेक, विचार और राजनीति से भीतरी शृंगार किया जाता है ॥१॥ शरीर चाहे जैसा सुंदर, सतेज और वस्त्राभूषणों से सुशोभित हो, परंतु यदि अंतर में चातुर्य-बीज (अर्थात् चतुराईपूर्वक धारण किया हुआ कवच) न हो तो उसकी शोभा नहीं है ॥२॥

वैसे तो इस समास का नाम 'उत्तमपुरुष' है, परंतु आगे की तीन ओवियों में समर्थ ने एक दुष्ट मनुष्य का वर्णन किया है। वे कहते हैं -

जो मुंहजोर, नीच, कठोरवचनी, सदा अभिमान में फंसे होते हैं, और न्याय-नीति का पालन नहीं करते ॥३॥ जो दुष्ट तथा शीघ्रकोपी होते हैं, कभी मर्यादा में नहीं रहते और राजनीति में संवाद नहीं करना चाहते ॥४॥ ऐसे उद्दंड, बेइमान, जिनके वचनों को सत्य का स्पर्श भी नहीं है, पापी और मूढ़ हैं - उन्हें राक्षस जानना चाहिये ॥५॥ इसके पश्चात् श्रीसमर्थ कुछ अतिशय मौलिक सूचनाएं देते हैं - सदा एक ही प्रकार का समय नहीं होता (अवसर नहीं मिलता), बहुत नियमों का

पालन भी राजनीति में बहुत काम नहीं आता, इसमें कई बार धोखा हो जाता है। ६॥ इस कारण "अति सर्वत्र वर्जयेत्", प्रसंग पहचान कर चलना चाहिये, व्यर्थ दुराग्रह में नहीं पड़ना चाहिये ॥७॥ बहुत दुराग्रह अथवा हठ नहीं करना चाहिये ॥८॥ अस्तु, ईश्वर अपने भक्तों का अभिमान रखता है और तुलजाभवानी की आप पर विशेष कृपा है। फिर भी पूर्ण विचार करने के पश्चात् ही कोई कार्य करें ॥९॥ अखंड सावधान रहना चाहिये, इससे अधिक क्या सूचना की जाए, परंतु सब बातें समझना चाहिये ॥१०॥ समर्थ पुरुष के पास अनेक लोग रहते हैं, उन सब का अभिमान रखना चाहिये। इससे वे निश्चल मन से रहते हैं ॥११॥ दुष्ट यहां बहुत बढ़ गये हैं, बहुत दिनों से उनका उपद्रव मचा है, इस कारण अखंड सावधान रहना चाहिये ॥१२॥

इसके पश्चात् श्रीसमर्थ कहते हैं -

वह ईश्वर सर्वकर्ता है। उसने जिसका अंगीकार कर लिया है उस पुरुष का विचार बिरला ही जान सकता है ॥१३॥ न्याय, नीति, विवेक, विचार, नाना प्रकार के प्रसंगों में दूसरे का मन परखना यह ईश्वर का वरदान है ॥१४॥ महायत्न, सावधानी, समय आ पड़ने पर धैर्य धरना, अद्भुत कार्य करना, ये सब ईश्वर का वरदान है ॥१५॥ यश, कीर्ति, प्रताप, महिमा, असीम उत्तम गुण और अनुपमता ईश्वर का वरदान है ॥१६॥ देव-ब्राह्मण पर श्रद्धा रखना, आचार-विचार से चलना, कितने ही लोगों को आश्रय देना और हाथ से सदा परोपकार होना, ईश्वर का वरदान है ॥१७॥ इहलोक, परलोक संभालना, अखंड सावधान रहना, बहुतों का बहुत कुछ सहन करना, ईश्वर का वरदान है ॥१८॥ परमात्मा का पक्ष ग्रहण करना, ब्राह्मण की चिंता रखना और बहुत लोगों को आश्रय प्रदान करना, ईश्वर का वरदान है ॥१९॥ धर्मस्थापना करने वाले नर ईश्वर का वरदान हैं। वे पूर्व में हुए, अभी हैं और भविष्य में भी आते रहेंगे ॥२०॥ उत्तम गुणग्राहकता, तीक्ष्ण तर्क और विवेक, धर्मवासना और पुण्यश्लोकता, ईश्वर का वरदान है ॥२१॥ सदा भिन्न भिन्न उपाय सोचते रहना चाहिये और विवेक से चलना चाहिये। यही सब गुणों का सार है, इससे इहलोक, परलोक दोनों सधते हैं ॥२२॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक १९

समास ६

बुद्धिवाद - निरूपण

प्रभू नाम ने पत्थरों को तराया ।
सहस्रों जनों ने समुद्धार पाया ॥
उसी नाम पर जो न विश्वास करता ।
उसे मान लो पूर्व का पाप-कर्ता ॥

- मनोबोध . ९८.

परमार्थी और विवेकी पुरुष का कार्य सब को पसंद आता है, क्योंकि वह सभी कार्य विचारपूर्वक करता है और गलतियां नहीं करता ॥१॥ जो बात लोगों को पसंद नहीं आती वह बात वह करता ही नहीं। वह आदि से अंत तक सब बातें समझ लेता है ॥२॥ जो स्वयं निस्पृहता का आचरण नहीं करता उसका कहना भी कोई नहीं मानता। बात तो यह है कि, इस जगद्रूप परमात्मा को राजी रखना कठिन है ॥३॥ जिसे विवेक बतलाना है वही यदि प्रतिकूल (अयोग्य) हो तो आगे का कार्य कैसे अच्छा होगा? ॥५॥ अपने परिचय के लोगों के बीच महंतपन (गुरुडम) नहीं फैलाना चाहिये। ऐसा करने में पहले तो अच्छा लगता है, बाद में गड़बड़ मचता है ॥ विवेकी पुरुष ऐसी बात को कैसे पसंद कर सकते हैं? ॥७॥ पति शिष्य और पत्नी गुरु - यह भी एक विचित्र बात है। अनेक प्रकार के भ्रष्टाचारों में यह भी एक है ॥८॥ जो अभिमान में आ जाता है, कोई बताये तो उसे ग्रहण नहीं करता, ऐसा पुरुष दूरदर्शी साधु नहीं हो सकता ॥१०॥ मेरी राय तो यह है कि, किसी से कुछ न मांगते हुए भगवद्भजन बढ़ाना चाहिये और विवेकबल से लोगों को भजन में लगाना चाहिये ॥११॥ विवेक के साथ दूसरे का मन रखकर, अपनी इच्छा, स्वधर्म और लोकाचार के साथ कार्य करना बहुत कठिन है ॥१२॥

जो बात उत्कट और भव्य हो वही ग्रहण करना चाहिये, सभी संशयित बातों का त्याग करना चाहिये और निस्पृहता से भूमंडल में विख्यात होना चाहिये ॥१५॥ लिखना, पढ़ना, अर्थ कहना, नाचना और कंठस्थ करना, सभी बातें अच्छी होनी

चाहिये ॥१६॥ दीक्षा और मैत्री अच्छी होनी चाहिये, राजनीति में तीक्ष्ण बुद्धि होनी चाहिये, परंतु अपने को अनेक प्रकार से अलिप्त रखना चाहिये ॥१७॥ हरिकथा में सदा-सर्वदा प्रेम रहना चाहिये जिससे कि सभी लोगों में नामस्मरण में प्रीति उत्पन्न हो। सूर्य के समान प्रभावशाली प्रबोधन करना चाहिये ॥१८॥ दुर्जनों को संभालना, सज्जनों को प्रसन्न करना और सबके मन की बात जानना चाहिये ॥१९॥ ऐसे साधु पुरुष की संगति से लोग सदाचारी बनते हैं, उनमें उत्तम गुणों का तत्काल ही उत्थान होता है और सारा समुदाय, अखंड रीति से, अभ्यास में जुट जाता है ॥२०॥ वह पुरुष जहां जाता है वहीं नित्य नया लगता है, लोगों का मन चाहता है कि, यह यहीं बना रहे। परंतु वह स्वयं मोह में नहीं फंसता ॥२१॥ उत्कट भक्ति, उत्कट ज्ञान, उत्कट चातुर्य, उत्कट भजन और उत्कट योग अनुष्ठान, आदि सभी उत्कट गुणों का वह जगह-जगह प्रचार करता रहता है ॥२२॥ जो उत्कट निस्पृहता धारण करता है उसकी कीर्ति दिक्दिगांतर में फैलती है और उत्कट भक्ति से सारे देश का जन-समूह शांति प्राप्त करता है ॥२३॥ कुछ न कुछ उत्कट बात जब तक मनुष्य में ही होगी तब तक कीर्ति कदापि नहीं फैल सकती। व्यर्थ वन-वन घूमने से क्या होता है? ॥२४॥ देह का कुछ भरोसा नहीं है, न जाने कब आयु पूर्ण हो जाए और कब कैसा प्रसंग आ पड़े ॥२५॥ इस कारण सावधान रहना चाहिये, यथासंभव, पूरा प्रयत्न कर, परोपकार करना चाहिये और भगवत्कीर्ति से भूमंडल भर देना चाहिये ॥२६॥ जो अपने लिये अनुकूल हो, वह तत्काल करना चाहिये और जो बात अपने से न हो सके उस पर विमल विवेक से विचार करना चाहिये ॥२७॥ क्योंकि ऐसी कोई बात नहीं है जो विवेक में न आ सकती हो - एकांत में विवेक प्रत्येक बात को अनुमान में ले ही आता है ॥२८॥ जहां अखंड रीति से उपाय सोचे जाते हैं और उनके हेतु सतत् प्रयत्न किया जाता है वहां कमी किस बात की? बिना एकांत के मनुष्य की बुद्धि उपयोग में कैसे आ सकती है? ॥२९॥ अतएव, एकांत में विवेक करना चाहिये, आत्माराम को पहचानना चाहिये - यहां से वहां तक कोई गड़बड़ नहीं है! ॥३०॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक १९

समास ९

राजनीति का व्यवहार

याद करें शिवराय का स्वरूप । याद करें शिवराय का साक्षेप ।।

याद करें शिवराय का प्रताप । भूमंडल में ।।१।।

कैसा था शिवराय का चलना। कैसा था शिवराय का बोलना।

शिवराय का अपना बना लेना। कैसा होता था ।।२।।

- संभाजी महाराज को समर्थ का पत्र

उपरोक्त ओवियां श्रीसमर्थ ने छत्रपति शिवाजी महाराज के देहावसान के पश्चात् संभाजी महाराज को लिखे पत्र से हैं। इन पंक्तियों में समर्थ कहते हैं कि राजनीति करनी हो तो छत्रपति शिवराय का आदर्श हमें अपने सामने रखना चाहिये। दासबोध यह आध्यात्मिक ग्रंथ होते हुए भी इस ग्रंथ के दशक-१९ समास-९ में श्रीसमर्थ ने राजनीति के संबंध में कुछ मौलिक सूचनाएं दी हैं। इस समास में वे कहते हैं -

जो ज्ञानी और उदास है तथा जिसे समुदाय एकत्र करने का उत्साह है, उसे अखंड रीति से एकांत सेवन करना चाहिये ।।१।। क्योंकि एकांत में उपाय, चेष्टाएं सृज्जती हैं और प्राणिमात्र की स्थिति तथा गति मालुम हो जाती है ।।२।। यदि वह चेष्टा ही नहीं करेगा तो उसे कुछ भी मालुम नहीं होगा ।।३।। कोई धन-दौलत कमाते हैं और कोई पास का माल भी गवाँ बैठते हैं। ये सब उद्योग की बातें हैं ।।४।। दूसरे के मन की बात पहले समझ लेने से अनिष्ट होने की संभावना नहीं रहती ।।५।। एक स्थान पर अधिक काल तक रहने से लोग ढिंढाई करने लगते हैं - अति परिचय से अवज्ञा होती है - अतएव एक ही स्थान पर बहुत दिन पड़े नहीं रहना चाहिये ।।५।। आलस से सारा कारोबार डूब जाता है और समुदाय का उद्देश्य पूरा नहीं होता ।।६।। राज्य चलाना हो तो कभी कभी जान-बूझ कर चोर को भंडारी बना देना चाहिये, उसमें दोष देखते ही उसे संभालना चाहिये और धीरे-धीरे उसकी मूर्खता दूर करनी चाहिये ।।९।। किसी प्राणी को दुःख न होने पावे, परंतु राजनीति से सब लोगों को वश में कर लेना चाहिये ।।१०।। दुर्जन से दुर्जन को भिड़ा देना चाहिये और वाचाल से वाचाल को। परंतु स्वयं पर किसी प्रकार का दोष लगने नहीं देना चाहिये ।।११।। कांटे से कांटा निकालना चाहिये

परंतु किसी को पता नहीं चलने देना चाहिये ।।१२।। गुप्त रीति से जो काम किया जाता है वह तत्काल सिद्ध होता है ।।१३।। राजा ऐसा हो कि जिसके विषय में सुनकर मन में प्रीति उत्पन्न हो, उसे देखकर वह प्रीति और गहरी हो और उससे परिचय होने पर उसकी सेवा करने की इच्छा जागृत हो ।।१४।। जो दूसरे पर विश्वास करता है, उसका कार्यभाग डूब जाता है। अतएव, योग्य पुरुष वही है, जो स्वयं कष्ट उठाते हुए, आत्मविश्वास रखकर, अपना काम संभालता है ।।१६।। मुख्य सूत्र अपने हाथ में रखना चाहिये और जो कुछ करवाना हो वह जनसमुदाय से करवाना चाहिये ।।१८।। वाचाल, पहलवान और कलहकर्ताओं को भी अपने हाथ में रखना चाहिये। परंतु ऐसा न हो जाये कि, सारे दुर्जन ही दुर्जन राजनीति में भर जाएं ।।१९।। विरोधियों को भेद से पकड़ में लाना चाहिये और रगड़ देना चाहिये, परंतु बाद में संभाल लेना चाहिये, एकदम ही नष्ट नहीं कर देना चाहिये ।।२०।। दुष्ट दुर्जनों से डर जाने पर राजनीति का महत्त्व नहीं रहता, किंतु बुरी भली सब बातें खुल जाती हैं ।।२१।। दुर्जनों को मन ही मन पहचान कर आरंभ में सज्जनों के समान उनसे विनती करनी चाहिये। बाद में मौका देखकर उनकी खबर लेनी चाहिये ।।२३।। लोगों में दुर्जनों की संख्या बढ़ जाने पर अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं, इस कारण उस मार्ग को बंद ही कर देना चाहिये ।।२४।। राजा ऐसा परमार्थ का पक्षपाती, धर्मात्मा हो कि, शत्रुसेना को देखते ही रणवीरों की भुजाएं फड़कने लगे।।२५।। उसे देखते ही दुर्जनों की छाती दहल उठे। वे जान जायें कि वह अनुभव के हथकंडे चलाता है और उपद्रव और पाखंड का पूर्ण नाश कर देता है ।।२६।। ये सब धूर्तता और चाणाक्षता के काम हैं। राजनीति में दृढ़ता चाहिये। ढीलेपन के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये ।।२७।। चतुर राजनेता स्वयं कहीं भी दिखाई नहीं देता परंतु सब दूर उसी की चर्चा होती रहती है और अपने वाग्विलास से वह सारी सृष्टि को मोहित कर देता है ।।२८।। भोंड़ के साथ भोंड़, हूस के साथ हूस और मूढ़ के साथ मूढ़ को भिड़ा देना चाहिये ।।२९।। लट्ट का सामना लट्ट से, उद्धत का उद्धत से और नटखट का नटखट से करा देना चाहिये ।।३०।। जैसे को तैसा जब मिलता है तब सभा में रंग जमता है। इतना सब होने पर भी यह पता नहीं लगना चाहिये कि, धनी अर्थात् इन सब बातों का कर्ता कहां है ।।३१।।

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक १९

समास १०

विवेक लक्षण

रखे वृत्ति जो सत्य वो संत जानो ।
दुराशा न हो दैन्य, वो संत जानो ॥
अरे देह में, भावना नाश लाती ।
नहीं सज्जनों को कभी बांध पाती ॥

- मनोबोध. १६८.

जो अखंड रीति से उपक्रम करता रहता है, जिसकी धारणाशक्ति अखंड होती है और जो सतत राजनीति का चिंतन करता रहता है ॥१॥ वह सारे संसार के उत्तम गुणों का निरूपण करते रहता है और एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोता ॥२॥ वह शास्त्राधार से नाना प्रकार की शंकाओं का समाधान करता है और सदा चर्चा करता है ॥३॥ उसे भक्तिमार्ग विशदरूप से मालूम होता है, उपासना मार्ग का उसे आकलन होता है, और अंतःकरण में ज्ञान-विचार का मनन करता रहता है ॥४॥ वैराग्य उसे बहुत अच्छा लगता है, उदासवृत्ति उसे बहुत प्रिय होती है, वह विस्तृत उपाधि में पड़ता है, पर उससे अलिप्त रहता है ॥५॥ अनेक प्रबंध उसे कंठस्थ होते हैं, प्रश्नों के समर्पक उत्तर देता है और उचित वचनों से सबके अंतःकरण शीतल करता है ॥६॥ लोगों का उस पर बहुत प्रेम होता है। अनेक लोग उसके पास आते हैं, पर उसके भीतरी स्वरूप का अनुमान लगा नहीं पाते ॥७॥ उपासना के मार्ग से वह सारे देश को व्याप्त कर लेता है ॥८॥ उसे जानते तो सब हैं, पर वह मिलता किसी को नहीं। लोग यह भी नहीं जानते कि वह क्या करता है! अनेक देशों के लोग उसे ढूंढते फिरते हैं ॥९॥ उन सब को वह अपने हाथ में रखता है, उनके मन को विवेक और विचार से भरता है और अनिश्चित अंतःकरणों को मनन की ओर लगाता है ॥१०॥ इस प्रकार जो अखंड रीति से विवेकपूर्ण व्यवहार करता है और सदा सावधान रहता है, उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता ॥१३॥ जितना कुछ अपने को मालूम हो वह सब धीरे-धीरे लोगों को सिखाना चाहिये और इस प्रकार बहुत लोगों को सयाना, जानकार बना देना चाहिये ॥१४॥

जितना हो सके वह स्वयं करना चाहिये और जो न हो सके वह लोगों से कराना चाहिये। परंतु भगवद्भजन छोड़ देना धर्म नहीं है ॥१६॥ स्वयं करना चाहिये, दूसरों से कराना चाहिये, स्वयं विवरण करना चाहिये, दूसरों से विवरण कराना चाहिये और स्वयं भजन मार्ग का अवलंबन कर अन्यो को भी भजन मार्ग पर लाना चाहिये ॥१७॥ यदि पुराने लोगों में रहते हुए मन उकता जाए तो नूतन प्रांत में गमन करना चाहिये ॥१८॥ जिसका देह का अभ्यास छूट गया, समझ लेना चाहिये कि, वह महंत बरबाद हो गया। नित्य नये लोगों को, झपाटे के साथ, चतुर बनाते रहना चाहिये ॥१९॥ उपाधि में फंसना नहीं चाहिये, उपाधि से घबराना भी नहीं चाहिये। किसी विषय में लापरवाही से काम नहीं चलता ॥२०॥ यह तो धकम पेल का संसार है, अशक्त (दुर्बल) से कैसे चल पायेगा? इसलिये बलशाली पुरुष को नाना प्रकार की बुद्धि और युक्ति सिखलानी चाहिये ॥२१॥ जब तक अपने से उद्योग (कार्य) हो सके तब तक रहना चाहिये और न हो सकने पर चले जाना चाहिये। इसके बाद आनंदरूप होकर भ्रमण करते रहना चाहिये ॥२३॥ जो उपाधि से छूट जाता है उसकी निस्पृहता और भी दृढ़ होती है और वह आनंदपूर्वक जिधर चाहता है, चला जाता है ॥२४॥ कीर्ति की ओर देखने से सुख नहीं मिलता और सुख की ओर देखने से कीर्ति नहीं। और विचार किये बिना कहीं भी कुछ नहीं ॥२५॥ वैसे तो क्या रहता है? जो कुछ होना होता है वह होता ही है, हां, मनुष्य केवल अपने ऊपर दुर्बलता का दोष लाद बैठता है। ॥२६॥ यदि पहले ही हिम्मत हार कर धैर्य खो देंगे तो फिर संसार से पार कैसे हो सकेंगे ॥२७॥ संसार तो पहले से ही खराब है, उसे विवेक से अच्छा कर लेना चाहिये। परंतु अच्छा करने से वह और भी फीका हो जाता है ॥२८॥ विचार करने से संसार की यह वास्तविकता समझ में आती है, परंतु किसी को धीरज नहीं खोना चाहिये ॥२९॥ धीरज छोड़ने से क्या होता है? सब कुछ सहना ही पड़ता है। विवेकपूर्ण चतुर मनुष्य ये सारी बातें जानता है ॥३०॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

दशक २०

समास १०

उपसंहार

निराकार आधार ब्रह्मादिकों को ।
जिसे वर्णते भ्रांति होती श्रुति को ।।
विचारों स्वयं से उसी में समाओ ।
जिसे अंत ना है उसे जान जाओ ।।

- मनोबोध . १४८.

श्रीसमर्थ रामदास रचित दासबोध में भक्ति, कर्म तथा ज्ञान इन तीनों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। इसके प्रथम पांच दशकों में भक्तिमार्ग, दशक छः से आठ तक ज्ञानमार्ग तथा उसके पश्चात् उन्नीसवें दशक तक विभिन्न समासों में परमार्थ के साथ-साथ प्रापंचिक जीवन में आवश्यक ऐसे अनेक विषयों का निरूपण करने के पश्चात् बीसवें दशक में समर्थ एक बार फिर शुद्ध अध्यात्म की चर्चा करते हैं। इस दशक के अंतिम समास में निर्गुण, निराकार, एकमेवाद्वितीय, विमल, पूर्ण ब्रह्म का विवरण करने के पश्चात् समर्थ कहते हैं -

शुद्ध और सार श्रवण करने से, शुद्ध और प्रत्ययात्मक मनन करने से, ज्ञान प्राप्त होते ही, स्वाभाविक ही मन का लय हो जाता है (उन्मनी दशा आ जाती है) ॥२५॥ अस्तु, साधन का फल मिल गया, संसार सफल हो गया, और निश्चल निर्गुण ब्रह्म अंतःकरण में छा गया! ॥२६॥ माया का हिसाब-किताब पूरा हो गया, पंचमहाभूतों का निपटारा हो गया, साध्य सिद्ध हो गया, अतएव अब साधन नहीं रहा! ॥२७॥ जो कुछ स्वप्न में देखा वह सब जागृति में उड़ गया, तब स्वाभाविक हो अनिर्वाच्य दशा आ गई। अब बोला नहीं जा सकता ॥२८॥ यह सब विवेक से जानना चाहिये। उस स्थिति का अनुभव करना चाहिये। बस, इससे जन्म-मृत्यु का चक्र मिट जाता है ॥२९॥

अपनी इस अद्भुत ग्रंथ रचना का श्रेय श्री रघुनाथजी को समर्पित करते हुए समर्थ कहते हैं -

भक्ताभिमानी दाशरथी (राम) ने कृपा की, बस, उसी समर्थ की कृपा के जो वचन - वही यह 'दासबोध' है ॥३०॥ इस बीस दशक वाले दासबोध का जो कोई श्रवण-मनन करेगा उसे परमार्थ प्राप्त होगा ॥३१॥ बीस दशक - दो सौ समासों का साधकों ने अच्छी तरह अध्ययन करना चाहिये। बार-बार मनन करने से इसकी विशेषता मालूम होने लगती है। ३२॥ ग्रंथ की प्रशंसा की जाती है, परंतु प्रशंसा करने का कोई प्रयोजन नहीं - यहां तो अनुभव की बात है, अतएव अनुभव ही कर लेना चाहिये ॥३३॥ देह तो पंचभूतों की है, और आत्मा इसमें कर्ता है - फिर ग्रंथ-रचना ही मनुष्य की क्यों कर हो सकती है? ॥३४॥ अतएव, जब सब जगदीश्वर ही करता है तब फिर ग्रंथरचना को मनुष्यकृत बतलाना मिथ्या है ॥३५॥ संपूर्ण देह के एक-एक तत्त्व को अलग कर दीजिए, कुछ नहीं रहता - तब फिर किस पदार्थ को 'अपना' कहें? ॥३६॥ अस्तु, ये सारे विवेक के काम हैं, अतएव यूं ही भ्रम में भटकना नहीं चाहिये - जगदीश्वर ने ही व्यवस्थित रीति से यह सारी रचना की है ॥३७॥

थोड़ी सी ओवियों में संपूर्ण ग्रंथ का सार इस प्रकार हमारे हाथ में देते हुए समर्थ ने अपने इस अद्भुत ग्रंथ का समापन किया है। अपनी इहलीला समाप्त करने के पूर्व शोकग्रस्त शिष्यों का शोक दूर करते हुए स्वयं समर्थ ने जिसे अपना स्वरूप बताया, ऐसा यह अद्भुत, अलौकिक ग्रंथ है। यह सर्वस्पर्शी और सर्वकालीन ग्रंथ है। धर्म को ग्लानि आने पर जिस प्रकार परमेश्वर अवतार लेते हैं, उसी प्रकार समाज अथवा राष्ट्र को किसी भी काल में निकृष्टावस्था प्राप्त होने पर यह ग्रंथ मार्गदर्शक सिद्ध होगा इसमें संदेह नहीं है। आज की विषम परिस्थिति में तो इसका विशेष महत्त्व है। छोटे, बड़े, संसारी, परमार्थी, राजनीतिज्ञ, व्यावहारिक ऐसे सभी के लिये समान रूप से मार्गदर्शक ऐसा यह ग्रंथ है। ऐसे इस अपूर्व ग्रंथ से कुछ चुने हुए समासों का यह संकलन नित्यपाठ हेतु यहां प्रस्तुत किया गया है।

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

प्रार्थना



कल्याण करीं रामराया

कल्याण करीं रामराया ।
जनहित विवरीं कल्याण करीं रामराया ॥
तळमळ तळमळ होतचि आहे ।
हे जन हातिं धरीं ॥१॥
अपराधी जन चुकतचि गेले ।
तुझा तूचि सांवरीं ॥२॥
कठीण त्यांवरी कठीण जालें ।
आतां न दिसे उरी ॥३॥
कोठें जावें काय करावें ।
आरंभिली बोहरी ॥४॥
दास म्हणे आम्हीं केलें पावलों ।
दयेसि नाहीं सरी ॥५॥
कल्याण करी रामराया ।

प्रार्थना



कल्याण करीं रामराया

हे रामराय, हे श्रीराम, आप सब का कल्याण करो, इस जनसामान्य का हितसाधन कैसे हो इसका विवरण आप ही करो ॥
मेरा मन व्यथित होकर छटपटा रहा है, अब इस जन जन का हाथ आप ही अपने हाथ में लो ॥१॥
ये सारे जन बड़े अपराधी हैं, ये गलतियां करते ही आये हैं। अब आप ही इन्हें संभालो ॥२॥
पहले से ही जीवन कठिन था अब तो और भी कठिन हो गया है, आशा के लिये कहीं कोई स्थान दिखाई नहीं देता ॥३॥
परिस्थिति अतिशय गंभीर है। मैं कहां जाऊं, क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता। मैंने कार्य का प्रारंभ तो कर दिया है, परंतु भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है, कौन जाने! ॥४॥
आपका यह दास कहता है, मैं जो कुछ कर सकता था वह मैंने किया। आपकी दया की कोई सीमा नहीं है, हे रामराय, आप ही सबका कल्याण करो ॥५॥

प्रार्थना

मराठी संत साहित्य में जिन चार ग्रंथों को वेदों के समतुल्य माना जाता है, वे ग्रंथ हैं - (१) श्री ज्ञानेश्वर महाराज रचित ज्ञानेश्वरी, (२) श्री एकनाथ महाराज रचित एकनाथी भागवत, (३) श्री तुकाराम महाराज रचित अभंगों का संग्रह तुकाराम गाथा तथा (४) श्रीसमर्थ रामदास रचित दासबोध। ज्ञानेश्वर महाराज ने श्रीमद्भगवद्गीता पर लिखे अपने अनुपम भाष्य 'ज्ञानेश्वरी' के अंत में विश्वात्मक परमेश्वर का आवाहन करते हुए विश्वमंगल की जो प्रार्थना की, वह 'पसायदान' के नाम से सुविख्यात है। श्री ज्ञानेश्वरजी के सद्गुरु श्रीनिवृत्तिनाथ अपने इस सत्शिष्य की प्रार्थना से संतुष्ट हुए और तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी, यह वरदान, पसायदान उन्होंने ज्ञानेश्वरजी को प्रदान किया।

ज्ञानेश्वरजी की संजीवन समाधि होने के करीब तीन सौ वर्ष पश्चात् महाराष्ट्र की भूमि पर श्रीसमर्थ रामदास का अवतरण हुआ। समर्थ के आराध्य भी श्रीराम हैं और सद्गुरु भी श्रीराम ही हैं। ज्ञानेश्वरजी के ही समान इस प्रार्थना में समर्थ भी अपने सर्वस्व के स्वामी रघुराय के पास 'पसायदान' अर्थात् प्रसाददान की कामना कर रहे हैं।

ज्ञानेश्वरजी के काल की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति काफी ठीक ठाक थी। स्वधर्म राजा था, समाज खा-पीकर सुखी था। समर्थ का समय आते आते परंतु यह परिस्थिति अतिशय शोचनीय हो गयी। उत्तर भारत में मुगल साम्राज्य और दक्षिण भारत में दख्खन की सल्तनतें ऐसे विधर्म शासन के अत्याचारों तले संपूर्ण हिंदू समाज पीसा जा रहा था। सब दूर अन्याय ही अन्याय। समर्थ ने बारह वर्ष की अल्पायु में घर द्वार छोड़ा। बारह वर्ष तपस्या की, पुरश्चरण किया, आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त हुए और फिर बारह वर्ष तक पूरे भारतवर्ष का भ्रमण करते रहे, समाज की दुर्दशा का प्रत्यक्ष दर्शन करते रहे। उनके द्वारा उस काल में रचित रचनाओं से उस भीषण परिस्थिति की कुछ कल्पना होती है। खाने को अन्न नहीं इस कारण मृत्यु का ग्रास बनने वाले लोगों की संख्या पिचानबे प्रतिशत थी। बार-बार पड़ने वाले सूखे के कारण खेती हो नहीं रही थी, किसानों के श्रम व्यर्थ ही चले जा रहे थे। जनसामान्य का भगवान पर से विश्वास ही उठ गया था। चारों ओर ढोंग और ठगने का बोलबाला था। लोगों के न पेट में अन्न था न शरीर पर वस्त्र। अपने प्राण बचाने के लिये अपने ही परिवार से बिछड़ने की नौबत

आ गयी थी। ऐसे जीवन से तो मृत्यु ही भली ऐसा लगने लगा था। जनसाधारण के शरीर निःसत्व हो गये थे। ऐसी यह अत्यंत विदारक परिस्थिति देखकर श्रीसमर्थ का संतहृदय करुणा से भर आया, व्यथित होकर छटपटाने लगा, मन बेचैन हो गया। इसमें से मार्ग खोजना ही होगा, परकीय सत्ता को शह देनी ही होगी, यह दृढ़ विचार उनके अंतःकरण में व्याप्त हो गया। श्रीसमर्थ ने अत्यंत व्यथित अंतःकरण से प्रभु श्रीराम को पुकारा और वे कह उठे, "हे रामराय, इन लोगों को तुम अपने से दूर न करो। इन्हें अपना कहो। उनका कल्याण करो। उनका हितसाधन कैसे हो इसका मार्गदर्शन अब तुम ही करो।"

समर्थ श्रीरामराय की प्रार्थना करते हुए आगे कहते हैं कि, इस समाज ने इतने वर्षों में जो अपराध किये हैं उनके विषय में मैं क्या कहूं! ये लोग सतत् अपराध, गलतियां करते ही आये हैं। समर्थ ने देखा कि देश में कोई भी मार्ग सुरक्षित नहीं रह गया था, लोग मारे जा रहे थे, लूटे जा रहे थे। बलदंड लोग मारपीट करते, दुर्बलों के नाक-कान काट लेते। स्त्रियों का अपहरण करना, उन्हें भ्रष्ट कर विदेशों में बेच देना यह तो विधर्म आक्रमकों का प्रिय खेल था। समर्थ ने अपनी रचनाओं में अपने देश के इतिहास के इस काजल समान अंधकार से व्याप्त कालखंड पर विस्तृत प्रकाश डाला है। सारा हिंदू समाज दुर्बल, लाचार और स्वाभिमानशून्य हो गया था, इसका खेद समर्थ के अंतःकरण को जला रहा था। ब्राह्मणों ने अपना स्वधर्म छोड़ दिया था, सदाचार छोड़ दिया था और क्षत्रियों ने भी अपना स्वत्व भुलाकर, स्वाभिमान खोकर, आत्मविस्मृति में डूबकर विधर्मियों की चाकरी स्वीकार कर ली थी। समाज की इस शोचनीय परिस्थिति का मूल कारण इन दो उच्च वर्णों का अविचारपूर्ण और भ्रष्ट आचरण है, यह समर्थ का स्पष्ट मत था। परधर्मिय आक्रमक पुण्यक्षेत्र तोड़ते हैं, ब्राह्मणों को पीड़ा देते हैं, पुण्यवान मरते हैं और पापी जीते हैं। स्वधर्म के मार्ग में अनेकानेक विघ्न आते हैं, कारण लोग डरपोक बन गये हैं। स्वाभिमान शून्य, स्वधर्माभिमान शून्य, विषयासक्त लोगों पर ऐसी विपत्ति आएगी ही। भगवान ने भी बौद्धावतार धारण कर लिया है! समझदार, सयाना व्यक्ति भी संभ्रमित हो जाए ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इसी कारण समर्थ ने असुरविनाशक श्रीराम की उपासना का पुरस्कार किया और स्वाभिमान, स्वधर्माभिमान जागृत करने वाले अध्यात्म और भक्ति का विवरण

कर, प्रयत्नवाद और पराक्रम का संघटित प्रचार किया। इसीलिये समर्थ कहते हैं, “यह सारा समाज अपराधी है, यह गलतियां करता ही आया है। परिस्थिति कठिन से और कठिन होती जा रही है, आशा की कोई किरण दिखाई नहीं देती।”

ऐसी इस भीषण परिस्थिति में महाराष्ट्र को अपनी कर्मभूमि बनाकर समर्थ ने अपने कार्य का आरंभ किया। परंतु कहां से प्रारंभ करूं, क्या करूं जिससे यह संपूर्ण चित्र बदल जाएगा इस विषय में उनके मन में शंका थी। समर्थ श्रीरामराय से कहते हैं कि, मैंने कार्य का आरंभ तो कर दिया है, परंतु भविष्य के उदर में क्या छिपा है, यह मैं नहीं जानता। अपने देश पर स्वधर्मियों का राज्य हो और सर्वत्र रामराज्य की स्थापना हो यह समर्थ की आकांक्षा थी। समर्थ के अथक प्रयत्न और छत्रपति शिवराय का अद्भुत पराक्रम, इन दोनों का मिलन हुआ और हिंदवी स्वराज्य के रूप में, कम से कम महाराष्ट्र की भूमि पर, रामराज्य की स्थापना होने का दृश्य अपने जीवनकाल में ही देखने का सौभाग्य समर्थ को प्राप्त हुआ। समर्थ कृतार्थ हुए। श्रीरामराय की दया की कोई सीमा नहीं है। वह कृपामेघ है। वह वर्षा करे तो किस बात की कमी होगी? प्रभु श्रीराम ने अपने इस दास को पूर्णकाम कर दिया है। समर्थ का अंतःकरण राष्ट्रहित की व्याकुलता से सर्वकाल व्याप्त रहत था। उसका अंशमात्र भी यदि यह समाज अपने जीवन में उतारे, तो वह पूरे देश का, राष्ट्र का हितसाधन कर लेगा, कल्याण कर लेगा। समर्थ की प्रार्थना स्वीकार हुई। समर्थ निष्काम हुए, पूर्ण संतुष्ट हुए और अत्यंत संतोष के साथ कह उठे, “कल्याण करीं रामराया! कल्याण करीं रामराया! कल्याण करीं रामराया!!!”

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥



संदर्भ ग्रंथ

- १ सार्थ दासबोध - लक्ष्मण रामचंद्र पांगारकर
- २ सार्थ श्रीमत् दासबोध - के.वि. बेलसरे
- ३ दासबोध (हिन्दी अनुवाद) - पं. माधवराव सप्रे
- ४ दैनेदिन जीवनात दासबोध - सुनील चिंचोळकर
- ५ दासबोध दर्शन - डॉ. मोहन ब. बांडे
- ६ मानस बोध अर्थात् श्रीसमर्थ रचित 'मनाचे श्लोक' का हिन्दी अनुवाद - प्र.ग. सहस्त्रबुद्धे
- ७ साक्षेप समर्थाचा - डॉ. वि.रा. करन्दीकर तथा कल्याणी नामजोशी

राष्ट्रगुरु श्रीसमर्थ रामदास विचार मंच, इंदौर
द्वारा हिन्दी में प्रकाशित पुस्तकें

- (१) राष्ट्रगुरु श्रीसमर्थ रामदास - डॉ. मोहन ब. बांडे
- (२) दासबोध - दर्शन - डॉ. मोहन ब. बांडे
- (३) विद्यार्थियों के श्रीसमर्थ रामदास - डॉ. मोहन ब. बांडे

संपर्क -

श्री जयंत कुलकर्णी

‘ज्योत्सना’,

३ लोकमान्य नगर, इन्दौर

फोन : ०७३१ २४७८६०

श्री अनिल चतुर्वेदी,

इन्दौर

फोन : ९८९३८-१२१९३

श्री गोपालराव येवतीकर

द्वारा - वनवासी कल्याण परिषद भोपाल

एम.पी.नगर झोन - १

भोपाल (म.प्र.)

फोन : ०७५५-२५५८३९५